विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१७ फरवरी-१९९८ अंक-२

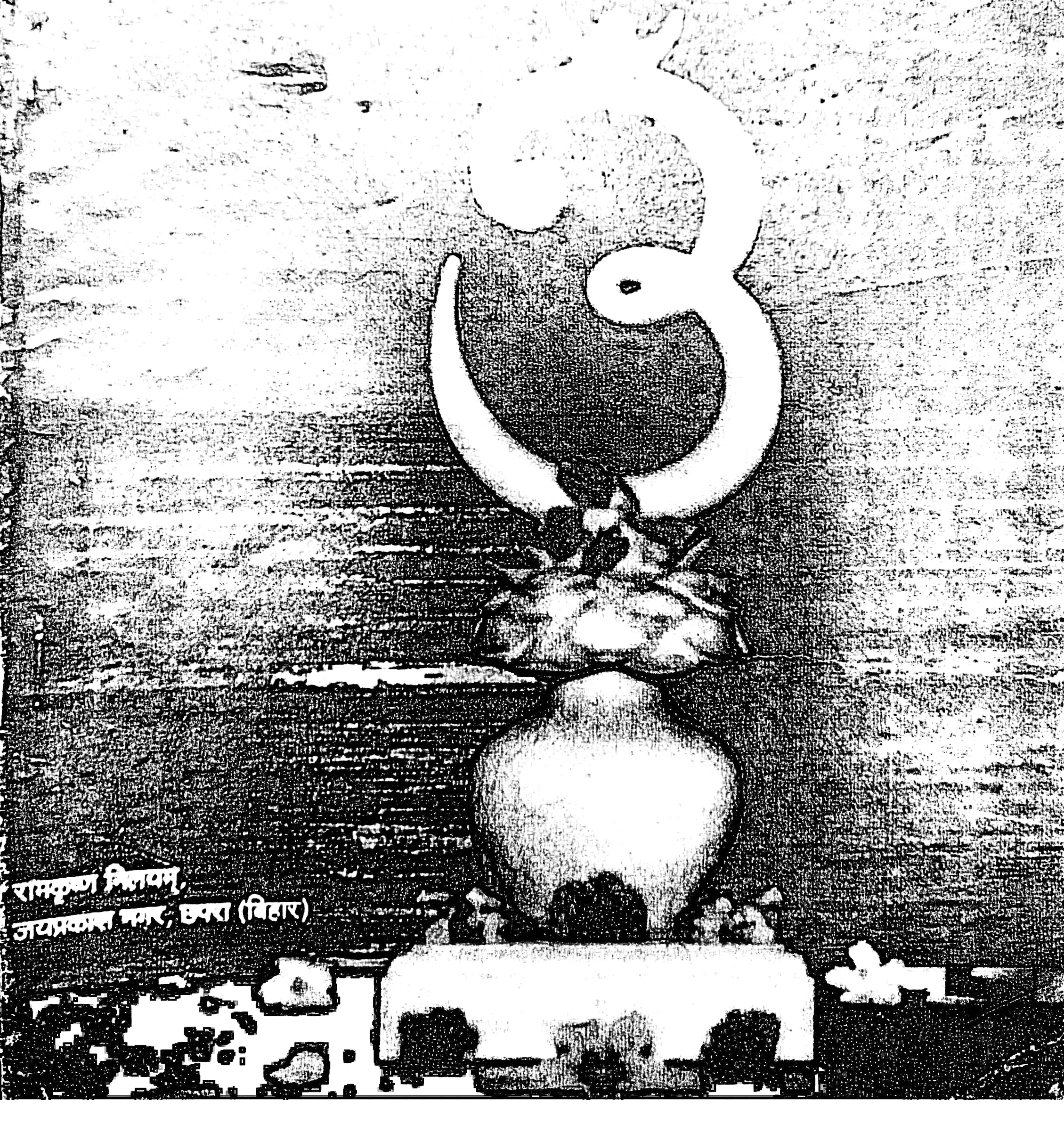

रामकृष्ण निलयम्,
जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. श्रीमती गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५७, श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, (नई दिल्ली)
१५८. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१५९. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म० प्र०)
१६०, श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म० प्र०)
१६१. श्री डी० एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६२. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६३ डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर (उ प्र.)
१६४. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६५. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६६. कुमारी जसवीर कौर आहूजा, पटियाला, पंजाब
१६७. श्रीमती मंजुला बोर्दिया, उदयपुर (राजस्थान)
१६८, श्रीमती सुदेश, अम्बाला शहर (हरयाणा)
१६९. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ० प्र०)
१७०. श्री एम० टी पुराणिक—नागपुर
१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, बड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष वोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजीभाई वी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एम० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—रोजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चोपड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची—(बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलाँग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, औंधी (म० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र०)
१९४. स्वामी चिरन्तनानन्द, रा.कृ.मि.नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पहडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक बिहार (दिल्ली)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण देव ने कहा है		१
२. मेरे रामकृष्ण भगवान	दास तीर्थानी	२
३. अजन्मा का जन्मोत्सव	(सम्पादकीय सम्बोधन)	३
४. श्रीरामकृष्ण और धर्म समन्वय	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	६
५. श्रीरामकृष्ण की अनमोल शिक्षा	श्री वीणा पाणि मिश्र	११
६. गृहस्थों के श्रीरामकृष्ण	श्री मोहन सिंह मनराल	१४
७. शिवरात्रि और देवाधिदेव महादेव	श्री सत्यनारायण चतुर्वेदी	१७
८. हुंकारो फिर एक बार (कविता)	स्वामी विशुद्धानन्द	२०
९. श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्यों की बातें	स्वामी निर्वानानन्द	२१
१०. एक संन्यासी की स्मृति में	प्रणवेश चक्रवर्ती	२७
११. देवघर में युवा रैली (समाचार)		३१

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो ।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१७ फरवरी—१९९८ अंक—२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'।।

सम्पादक :

डा० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :

शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :

विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

उनकी (भगवान की) कृपा से ही उनके दर्शन होते हैं। वे ज्ञान समुद्र हैं। उनकी एक ही किरण से संसार में यह ज्ञान का प्रकाश फैला हुआ है। उसी की सहायता से हम एक दूसरे को पहचानते हैं और संसार में तरह-तरह की विद्याएँ सीखते हैं। यदि वे एक बार अपना प्रकाश अपने चेहरे पर डालें तो हमें उनके दर्शन हो सकते हैं।

(२)

जब बाढ़ आती है तो उसका पानी नदी के आसपास के मैदान नाले, गढ़ैया सभी में होकर बहने लगता है, बरसात का पानी केवल नालियों से ही बहता है। जब अवतार महापुरुष आते हैं उस समय उनकी कृपा से सभी तर जाते हैं, परन्तु सिद्ध पुरुष बड़ी मुश्किल से ईश्वरदर्शन कर स्वयं ही मुक्त हो पाता है।

(३)

सिद्ध पुरुष कैसा होता है ?—जैसे किसी जगह पर कुआँ था, पर मिट्टी से पट गया था; सिद्ध पुरुष उसे फिर खोद निकालता है। परन्तु अवतार कैसा होता है—जहाँ कुआँ नहीं है, ऐसी जगह वह कुआँ खोद निकालता है। सिद्ध पुरुष मुमुक्षु जनों को ही मुक्ति दे सकते हैं परन्तु अवतार प्रेम-भक्तिरहित शुष्कहृदय व्यक्तियों का भी उद्धार करते हैं।

(४)

विवाद मत करो। तुम स्वयं जिस प्रकार अपने मत पर दृढ़ता के साथ निर्भर रहते हो, उसी प्रकार दूसरों को भी अपने-अपने मत पर निर्भर रहने दो। वृथा तर्क-विवाद कर तुम किसी को उसकी गलती नहीं समझा पाओगे। जब ईश्वर की कृपा होगी तब सभी अपनी-अपनी गलती समझ सकेंगे।

मेरे रामकृष्ण भगवान

—दास तीर्थानी
मुंबई

ठाकुर मेरे इष्टदेव हैं, ठाकुर मेरे प्राण,
बसते मेरे रोम रोम में, रामकृष्ण भगवान ॥ १ ॥
तुमने भिन्न-भिन्न रूप लिये, सीता के राम, राधा के श्याम,
और बने प्रिय माँ सारदा के रामकृष्ण भगवान ॥ २ ॥
मैं 'मैं-मेरा' त्याग करूँ अब, छूटे यह अभिमान,
मन का झूठा अहम् मिटाओ, मेरे रामकृष्ण भगवान ॥ ३ ॥
तू माता-पिता, तू विश्व-विधाता, हम सब तेरी सन्तान,
तुम संग जन्म-जन्म का नाता, रामकृष्ण भगवान ॥ ४ ॥
जगत में सबकी सेवा करें हम, रहे भक्ति निष्काम,
इतना ही वर तुमसे मांगूँ, रामकृष्ण भगवान ॥ ५ ॥
नित दिन जप लूँ नाम तुम्हारा, सदा करूँ तव ध्यान,
मन मन्दिर में वास करो नित, रामकृष्ण भगवान ॥ ६ ॥
ब्रह्म सत्य है, जगत है मिथ्या, प्राप्त करूँ यह ज्ञान,
जीव ईश का भेद मिटाओ, प्रभु रामकृष्ण भगवान ॥ ७ ॥
सुख मिले या दुःख मिले या मिले मान अपमान,
तव इच्छा बिन कुछ नहीं होता, रामकृष्ण भगवान ॥८॥
मोह माया के बंधन टूटे, दो मुझको यह ज्ञान,
विषयों से आसक्ति हटाओ, प्रभु रामकृष्ण भगवान ॥९॥
तू स्वामी मेरा, रहूँ मैं दास तेरा, मांगू यह वरदान,
तुझ संग प्रेम की डोर बाँध लूँ, रामकृष्ण भगवान ॥१०॥
हे दीन दयालु अन्तर्यामी, नाथ सर्व शक्तिमान,
पल पल तेरा दर्शन पाऊँ, रामकृष्ण भगवान ॥११॥

अजन्मा का जन्मोत्सव

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

भगवान श्रीरामकृष्ण देव का अवतरण फाल्गुन शुक्ल द्वितीया को हुआ था। प्रतिवर्ष उक्त दिवस को पावन-पुण्य दिवस मानकर हम श्रीरामकृष्ण देव का जन्मोत्सव सोल्लास मनाया करते हैं। इन दिनों भगवानों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। इससे घबड़ाकर कई लोगों के मन में यह शंका होती है कि क्या इन नवागतुंक भगवानों की भीड़ में वास्तविक भगवान् को पहचाना जा सकता है ? भगवान् तो नित्य, शाश्वत, अव्यय, अविनाशी, अखण्ड चैतन्य सत्ता को कहते हैं। वे तो अजन्मा हैं। क्या उनका भी जन्म होता है ? क्या जो असीम हैं वे ससीम हो सकते हैं; जो निर्बन्ध हैं वे जन्म-मरण के बन्धन में आबद्ध हो सकते हैं ? प्रश्न स्वाभाविक है। किन्तु ऐसा ही प्रश्न अर्जुन के मन में भी कुरूक्षेत्र की समर-भूमि में उठा था। जब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि उन्होंने अविनाशी योग की कथा पहले सूर्य से कही थी, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कही और आज वे करुणावश वही कथा अर्जुन से कह रहे हैं तो अर्जुन को सन्देह हुआ। उन्हें लगा कि श्रीकृष्ण का जन्म तो अभी हाल का है और सूर्य का जन्म बहुत पुराना है, तव वे यह कैसे मानें कि कृष्ण ने ही यह योग-कथा कल्प के आदि में सूर्य से कही थी ? श्रीकृष्ण ने इस शंका का बड़ा सुन्दर समाधान यह कहकर दिया—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥

(गीता ४/६)

अर्थात मैं अजन्मा और अविनाशी स्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते भी अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योगमाया से प्रकट होता हूं।

यह ध्यान देने की बात है। भगवान् अजन्मा और अविनाशी हैं, तथापि लोक-मंगल के लिए ही वे नर रूप धारण करते हैं। इसे हमें दृढ़ता से जान लेना चाहिए। स्वयं श्रीरामकृष्ण ने ईश्वर की अभिव्यक्ति के रूप में अवतार की व्याख्या करते हुए कहा है—"ईश्वर नित्य हैं; फिर वे लीला भी करते हैं—ईश्वरलीला, देवलीला, जगत्-लीला, नरलीला। नरलीला में वे अवतार बनकर आते हैं। नरलीला कैसी होती है जानते हो ? जैसे परनाले के भीतर से होकर बड़ी छत का पानी धड़धड़ करते हुए नीचे गिरता है। उसी सच्चिदानन्द की शक्ति मानो परनाले के भीतर से आ रही है। अवतार को

सब लोग नहीं पहचान सकते। रामचन्द्र को भरद्वाज आदि केवल सात ही ऋषियों ने अवतार के रूप में पहचाना था। ईश्वर मनुष्य को ज्ञान-भक्ति सिखाने के लिए नररूप धारण कर अवतीर्ण होते हैं।

यह सच है कि आज जिसने थोड़ी-बहुत साधना कर ली, थोड़ा-बहुत शास्त्र पढ़कर व्याख्यान-कौशल से लोगों को मुग्ध करने में सफलता प्राप्त कर ली और लुभावने हथकंडों से कुछ शिष्यों की भीड़ एकत्र कर ली, उसने अपने को भगवान् घोषित कर दिया। ऐसे व्यक्ति कामिनी-कांचन की दुनिया में जीते हैं, योग-वासना से न तो स्वय मुक्त हो पाते हैं और न लोगों को ही अध्यात्म का सही दिशा-निर्देश कर पाते हैं। ऐसे भगवानों की आज भीड़ उमड़ रही है। वे धर्म के अनुरूप स्वयं को नहीं ढाल कर, धर्म को ही अपने अनुरूप परिभाषित करने लगते हैं। वे भोग-विलास के सोपान पर चढ़कर मुक्ति के कैलाश शिखर पर पहुँचने का दर्शन प्रस्तुत करने लगते हैं। यह निश्चय है, कि ऐसे व्यक्ति अवतार नहीं हो सकते। वस्तुत: अवतार को पहचानना कठिन है, बहुत कठिन है। अनन्त का सान्त बनकर लीला करना ही अवतार का स्वरूप है। श्रीरामकृष्ण ने अवतार के सम्बन्ध में एक बड़ा सुन्दर प्रतीक प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं—"अवतार मानो ईश्वर का कर्मचारी है—जैसे जमींदार और उसका नायक। जमींदार अपने अधिकार के प्रदेशों में से जहाँ भी कोई गड़बड़ हो वहीं अपने नायक को भेज देता है, उसी प्रकार संसार में जहाँ भी धर्म हानि होने लगती है, उसे दूर करने के लिए ईश्वर वहीं अपने अवतार को भेज देते हैं।

श्रीरामकृष्ण, का अवतरण विश्व में धर्म हानि को दूर करने के लिए ही हुआ था। वे धर्मों में हुई विकृतियों को दूर करने आये थे। वे जीव को परमात्मा तक पहुँचाने का पुल बनकर आये थे। वे एक विलक्षण धर्म-सेतु और अध्यात्म के अभिनव शलाका पुरुष थे। सामान्य सिद्ध व्यक्ति ऐसा नहीं होता। उनकी ही अमृतवाणी है—"जब लकड़ी का बड़ा भारी कुन्दा पानी पर बहता है तब उस पर चढ़कर कितने ही लोग आगे निकल जाते हैं, उनके वजन से वह डूबता नहीं। परन्तु सड़ियल लकड़ी पर एक कौआ भी बैठे तो वह डूब जाती है। इसी प्रकार जिस समय अवतार-महापुरुष आते हैं उस समय उनका आश्रय ग्रहण कर कितने लोग तर जाते हैं, परन्तु सिद्ध पुरुष काफी श्रम करके किसी तरह स्वयं तरता है।"

आज विश्व के सभी देशों के लाखों-लाख लोग श्रीरामकृष्ण का आश्रय लेकर अपने उद्धार का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण रूपी विशाल अश्वत्थ वृक्ष के नीचे विश्व के भोग-दग्ध लाखों लाख लोग एक दिव्य शान्ति और आत्मिक सुशीतलता की मन्दाकिनी में स्नान कर रहे हैं तथा अपने नये अध्यात्म परायण जीवन का गठन कर रहे हैं। वस्तुतः अवतार पुरुष का जन्म-कर्म दिव्य होता है, अलौकिक होता है। इसे जान कर ही हम अपना उद्धार कर सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी से अर्जुन को समझाते हुए कहा था—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

(गीता ४/९)

अर्थात्, हे अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं। इस प्रकार जो मनुष्य तत्व से जान लेता है, (सर्व शक्तिमान् सच्चिदानन्दघन परमात्मा अज, अविनाशी और सर्व भूतों के परम गति तथा परम आश्रय हैं; वे केवल धर्म-स्थापन और संसार का उद्धार करने के लिए ही अपनी योगमाया से सगुण रूप धारण कर प्रकट होते हैं, इसलिए परमेश्वर के समान सुहृद, प्रेमी और पतित पावन दूसरा कोई नहीं है, ऐसा समझकर जो पुरुष परमेश्वर का अनन्य भाव से निरन्तर चिन्तन करता हुआ आसक्ति रहित हो संसार में आचरण करता है, वही उनको तत्व से जानता है) वह शरीर को त्याग कर पुनः जन्म नहीं ग्रहण करता, किन्तु मुझे ही प्राप्त होता है।

हमें श्रीरामकृष्ण के अवतरण-उत्सव के अवसर पर न केवल उनकी बाह्य पूजा करनी है बल्कि उन्हें तत्वरूप से जानना भी है। इसी में हम सब का मंगल है, कल्याण है। श्रीकृष्ण का ही परम आश्वासनपूर्ण वचन है –

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः समर्त्येषु सर्व पापैः प्रमुच्यते ।।

(गीता १०/३)

यानि जो मुझको अजन्मा अर्थात् वास्तव में जन्मरहित, अनादि अर्थात् आदि रहित और लोकों का महान् ईश्वर तत्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।

आइए, भगवान् श्रीरामकृष्ण देव से हम प्रार्थना करें कि वे हम सब पर ऐसी अहेतुकी कृपा करें कि हम उनके तात्विक रूप को जान सकें और उन अजन्मा, अनादि, अखंड शाश्वत श्रीरामकृष्ण के श्री चरणों में एकान्त प्रणति तथा आत्म समर्पण द्वारा पाप मुक्त हो भव सागर से उत्तीर्ण हो सकें। जय श्रीरामकृष्ण !

प्रश्न : माँ, मैं तुम्हारे पास इतने समय से आ रहा हूँ और मुझे लगता है कि मुझे तुम्हारी कृपा प्राप्त हो गयी है, फिर भी मुझे कोई अनुभव नहीं होता।

उत्तर : बेटा, मान लो तुम एक पलंग पर सो रहे हो और अगर तुम्हें कोई पलंग समेत किसी दूसरी जगह पर उठाकर रख दे, तो क्या तुम जागते ही यह जान सकते हो कि तुम एक नये स्थान में आ गये हो ? तुम बिलकुल नहीं जान सकोगे। जब तुम्हारी तन्द्रा पूरी तरह से मिट जाएगी, तभी तुम जान सकोगे कि तुम एक नयी जगह पर आ गये हो।

—माँ सारदा

श्रीरामकृष्ण और धर्म-समन्वय

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
सम्पादक, वेदान्त केसरी,
रामकृष्ण मठ, चेन्नई।

प्रस्तावना :

वर्तमान मानव-जीवन अनेकानेक विसंगतियों से पूर्ण है। एक ओर मानव की व्यक्तिगत आदर्श अभिलाषाएँ, आकांक्षाएं हैं, तो दूसरी ओर सामाजिक, पारिवारिक, राष्ट्रीय कर्तव्य हैं। स्वयं मानव अपने आपमें विरोधाभासों का समूह है। उसकी इच्छाएँ उसे एक ओर खींचती है तो उसके विचार दूसरी ओर। उसकी भावनाओं और बुद्धि में खींचतान बनी रहती है। और फिर उसके आदर्श और व्यवहार भी एक दूसरे से मेल नहीं खाते। वह कहता कुछ है, उसकी मान्यताएँ कुछ होती हैं, लेकिन वह करता कुछ और है या करने को बाध्य होता है।

समाज, राष्ट्र और समग्र विश्व आज अनेक द्वन्द्वों का शीत या उष्ण युद्ध-क्षेत्र बन गया है। अनेक धर्म एवं सम्प्रदाय हैं, जो एक दूसरे से झगड़ रहे हैं। जातिवाद तो है ही। साथ ही अनेक परस्पर विरोधी मतवाद, चिन्तन-प्रणालियाँ और जीवन-पद्धतियाँ एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा कर रही हैं तथा मानव की बुद्धि एवं जीवन को बुरी तरह प्रभावित कर रही हैं। सूचना, संचार और पर्यटन के साधनों की व्यापक वृद्धि ने विश्व को अत्यंत छोटा कर दिया है। विभिन्न विचारधारा एवं जीवन-शैली वाले लोग एक-दूसरे के सम्पर्क में आने लगे हैं। विश्व तथा समाज अब विविधतापूर्ण (PLURALISTIC), बहु आयामी हो गया है।

पूर्व-पूर्व के समन्वय प्रयास :

श्रीरामकृष्ण द्वारा किये गये समन्वयों के प्रयत्नों का अवलोकन करने से पूर्व, उनके पूर्व हुए समन्वयों के प्रयासों का अध्ययन किया जाय। सत्य तो यह है कि व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि विभिन्न स्तरों पर द्वन्द्व और विसंगतियाँ सदा विद्यमान रही हैं और साथ ही सभी देशों और सभी कालों में इनका समन्वय करने के प्रयत्न भी होते रहे हैं। यही नहीं, सभी अनेकताओं और विभेदों की पार्श्वभूमि के रूप में सदा एक एकता विद्यमान रहती है, और सभी समन्वय-प्रयासों में उस एकता को अधिक महत्व देने का प्रयत्न किया जाता है। भारत में विभिन्न धर्मों तथा विभिन्न सामाजिक संगठनों एवं संस्कृतियों का एक साथ अस्तित्व अपने आप में इस बात का एक प्रमाण है। कि भारतीय संस्कृति एकता पर आधारित है। हिन्दू धर्म के चार वर्ण, चार आश्रम तथा पुरुषार्थ भी इस समन्वय के ही प्रयास हैं। उदाहरण के लिये जब ब्राह्मण वर्ण का अत्यधिक वर्चस्व होने के फलस्वरुप, संन्यास आश्रम के गौण होने के फलस्वरूप तथा चार पुरुषार्थों में धर्म पर अधिक बल देने से मोक्षरूपी पुरुषार्थ के गौण होने के फलस्वरूप, यह सन्तुलन बिगड़ गया था तब जैन तथा बौद्ध धर्म रूपी दो निवृत्ति परायण, ब्राह्मण विरोधी, संन्यास एवं मोक्ष प्रधान धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ था, जिससे समाज में तथा व्यक्ति की प्रेरणाओं में पुन: समन्वय स्थापित किया जा सके। शंकराचार्य एक महान् समन्वयाचार्य थे जिन्होंने

हिन्दू धर्म के विभिन्न पक्षों का सुन्दर समन्वय किया था।

आधुनिक युग में कुछ नयी समस्याओं का प्रादुर्भाव हुआ है। संघर्ष के केन्द्र बिन्दु परिवर्तित हुए हैं, नये घटक समाज और मानव को प्रभावित कर रहे हैं। वर्तमान युग में विज्ञान और तकनीकी मानव जीवन को अत्यधिक प्रभावित कर रहे हैं। भौतिकवाद और भोगवाद अपने वर्चस्व पर हैं। वर्ण व्यवस्था और उस पर आधारित वर्णाश्रम-धर्म का लगभग लोप हो चुका है। और समाज का वाणिज्यीकरण, अर्थ का, धन का प्रभाव सर्वत्र दिखायी दे रहा है। एक वैश्य-युग का प्रादुर्भाव हुआ है। अतः हमें श्रीरामकृष्ण के समन्वय-प्रयासों को इस पृष्ठभूमि में देखना होगा।

समन्वय का आधार :

ऐसी स्थिति में विभ्रम-विसंगतियों से बचने का क्या उपाय है? क्या ऐसे कोई महापुरुष हैं जिन्होंने इन पर विजय पाकर इन्हें सुलझाकर शान्ति पायी है? क्या उपाय सुझाये हैं उन्होंने? आइए, इन महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर के लिए श्रीरामकृष्ण की ओर मुड़ें।

श्रीरामकृष्ण एक ऐसे अद्भुत महापुरुष थे जिन्होंने अपने जीवन, व्यक्तित्व तथा उपदेशों में धर्म, जीवन, व्यवहार आदि की विभिन्न विसंगतियों का एक अद्भुत समन्वय साधित किया है। वे सही मायनों में समन्वयाचार्य समन्वयावतार थे। उनमें विभिन्न आदर्शों और भावों को व्यक्ति, समाज आदि में पनप रहे विभिन्न आदर्शों, चिन्तन और जीवन-शैलियों को समझने, परखने तथा आत्मसात् करने की अद्भुत क्षमता थी। यही कारण है, कि मात्र धर्म जगत् के भी विभिन्न उच्चतर भावों और आदर्शों को वे आश्चर्यजनक रूप में समन्वित करने में, उन्हें अपने यथायथ स्थान में रखने में समर्थ हुए थे। और उनकी विभिन्न उच्चादर्शों को आत्मसात् करने की अपूर्व क्षमता के फलस्वरूप वे सभी को अपने उच्चतम आदर्श प्रतीत होते थे।

यदि श्रीरामकृष्ण के जीवन का निष्पक्ष अवलोकन किया जाये तो हम पाएँगे कि उन्होंने कभी इच्छापूर्वक किसी समन्वय का प्रयत्न नहीं किया। जैसा कि उनके विषय में स्वामी विवेकानन्द ने कहा है; "वे तो केवल एक जीवन जी गये, अब हम उसकी व्याख्या करके उन्हें समन्वयाचार्य कह रहे हैं।" स्वयं श्रीरामकृष्ण ने तो अपनी तीव्र व्याकुलता की सहायता से सर्वप्रथम तो परमात्मा का साक्षात्कार किया। और उसके बाद उनके मन में अन्य विभिन्न धर्मों की साधना करने की स्पृहा जगी। श्रीरामकृष्ण के धर्मसमन्वय की कथा में जो सबसे महत्वपूर्ण बात है, वह भी यही है : उनका ईश्वर साक्षात्कार। सबसे पहले उन्होंने समन्वय के सूत्र का, उस एकत्व का साक्षात्कार किया, जिसकी भित्तिपर समग्र द्वैत विद्यमान है। अतः उनके लिये समन्वय अत्यन्त सहज रूप से सिद्ध हो गया। इसी कारण वे सदा, बिना किसी कठिनाई के प्रत्येक धर्म अथवा मतवाद के मूल सत्य तक पहुँचने में समर्थ होते थे।

विभिन्न प्रकार के समन्वय और श्रीरामकृष्ण :

समन्वय, विशेषकर विभिन्न धर्मों के समन्वय को भी विभिन्न अर्थों में देखा जाता है। समन्वय के लिए विभिन्न शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है यथा, HARMONY, INTEGRATION, सामंजस्य इत्यादि-इत्यादि। आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व ईसाई धर्मावलम्बी यह समझते थे कि ईसाई-धर्म ही एकमात्र सत्य धर्म है। अन्य धर्मों वाले HERATIC या विधर्मी कहलाते थे। इसी तरह इस्लाम धर्मावलम्बी भी अन्य लोगों को काफ़िर

कहते हैं। लेकिन पिछले सौ वर्षों में लोगों के विचारों में परिवर्तन हुआ है और वे अन्य धर्मों की सत्यता स्वीकार करने को बाध्य हुए हैं। लगभग एक दशक पूर्व ईसाई धर्म की सर्वोच्च-सभा ने यह स्वीकार किया कि "सभी धर्मों में सत्य है।" लेकिन 'सभी धर्मों में सत्य है"—यह कथन "सभी धर्म सत्य हैं", इससे भिन्न है। "सभी धर्मों में सत्य है"—इस कथन का निहितार्थ यह है कि हमारा धर्म पूर्ण सत्य है जब कि दूसरे धर्मों में, किसी में कम तो किसी में अधिक सत्य विद्यमान है। अतः अन्य धर्मों को भी सहन कर लो। इसे धर्म सहिष्णुता या 'TOLERANCE' कहते हैं। स्वामी विवेकानन्द को यह 'TOLERANCE' शब्द पसन्द नहीं था। इसमें अहंकार की बू है। मानो यह कहना कि अरे, यह व्यक्ति अभी नहीं समझता, अज्ञानी है, जब आगे बढ़ेगा तो समझ पायेगा, इसे सहन कर लो। इसके बदले स्वामी विवेकानन्द 'ACCEPTANCE' की बात करते हैं अर्थात् सभी धर्मों को सत्य मानकर स्वीकार करना। श्रीरामकृष्ण का दृष्टिकोण भी यही है। वे कहते हैं कि सभी धर्म एक ही परमात्मा तक पहुँचने के भिन्न किन्तु पूर्णरूपेण सत्य मार्ग हैं। वेदों में भी कहा गया है, "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति", अर्थात् सत्य एक ही है किन्तु विद्वान् उसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। शिवमहिम्नः स्तोत्र में कहा गया है कि जिस प्रकार विभिन्न नदियाँ टेढ़े या सीधे मार्गों से होती हुई बहती हैं, लेकिन उन सब का गन्तव्य एक समुद्र ही है, उसी प्रकार विभिन्न धर्म उनके अनुयायियों के रुचि-भेद के अनुसार भिन्न हैं, फिर भी उनका गन्तव्य एक परमात्मा है। लेकिन श्रीरामकृष्ण की विशेषता यह है कि उन्होंने सभी धर्मों की प्रचलित साधना-पद्धतियों का एक के बाद एक स्वयं अनुसरण कर उसी एक लक्ष्य की प्राप्ति की तथा प्रयोगात्मक-पद्धतियों से, स्वयं साधना करके, उपर्युक्त चिरन्तन सत्य की पुष्टि की। यही कारण है कि श्रीरामकृष्ण धर्म-परिवर्तन के पक्षधर नहीं थे तथा किसी व्यक्ति के धर्म-परिवर्तन का अनुमोदन नहीं करते थे।

धर्म-समन्वय का एक दूसरा तरीका है: विभिन्न धर्मों की अच्छी बातों को एक साथ मिला कर एक नये सार्वभौमिक धर्म की सृष्टि करना। इस तरह के प्रयास भी समय-समय पर होते आये हैं। उदाहरण के लिये बादशाह अकबर ने हिन्दू तथा इस्लाम धर्म को मिलाकर "दीनेइलाही" नामक एक धर्म की रचना करने का प्रयत्न किया था, जिसे दोनों धर्मों के लोग स्वीकार कर सकें। ब्रह्म-समाज भी इसी तरह का हिन्दू धर्म और ईसाई धर्म के सम्मिश्रण का प्रयास था। लेकिन श्रीरामकृष्ण द्वारा किया गया धर्म-समन्वय इनसे भिन्न है उन्होंने विभिन्न धर्मों को मिलाकर किसी नये धर्म के निर्माण का प्रयास नहीं किया। उन्होंने प्रत्येक धर्म को, उसकी शाखा विशेष तक को उसकी पूर्णता में स्वीकार कर सत्य घोषित किया।

विभिन्न धर्मों के झगड़ों के कारणों को खोजने के प्रयास में कुछ लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि सामान्यतः धर्मों के मतभेद क्रिया-अनुष्ठान, मतवाद, मन्दिर, धर्म का सामाजिक पक्ष आदि को लेकर होते हैं। इन्हें कुछ लोग 'RELIGIOSITY' का नाम देकर धर्म के मौलिक व सैद्धान्तिक पक्ष से अलग करके, इन सैद्धान्तिक पक्षों में समन्वय का प्रयत्न करते हैं। स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि अन्तर्निहित देवत्व की अभिव्यक्ति ही वास्तविक धर्म है तथा मत-मतान्तर, पुस्तकें, मन्दिर-गिरजे, क्रिया-अनुष्ठानादि उसके गौण अंग हैं। लेकिन गौण होते हुए भी उनका साधक की प्रारम्भिक अवस्था के लिये महत्व है। और श्रीरामकृष्ण ने इन सभी को स्वीकार किया है।

उनके अनुसार प्रत्येक धर्म अपनी मौलिक, सैद्धान्तिक बातों में ही सत्य नहीं है अपितु अपने बाह्य क्रिया-कलापादि भी उतना ही सार्थक है।

ईश्वर का स्वरूप :

श्रीरामकृष्ण ने स्वयं साधना एवं साक्षात्कार के द्वारा केवल यही सिद्ध नहीं किया कि ईश्वर है, बल्कि उनके स्वरूप के बारे में प्रचलित समग्र मत-भेदों को भी दूर किया है। वे कहते हैं कि ईश्वर साकार भी है और निराकार भी। जिस प्रकार समुद्र की अथाह जलराशि कुछ स्थानों पर ठंड के कारण बर्फ का आकार धारण कर लेती है, उसी प्रकार भक्ति के द्वारा भगवान् भक्त-विशेष की कल्पना के अनुरूप रूप धारण करता है। और फिर भगवान् साकार और निराकार दोनों के परे भी है।

ईश्वर व जीव का सम्बन्ध :

धर्मों के बीच मतभेदों का एक और कारण है : ईश्वर और जीव के सम्बन्ध के विषय में विभिन्न सिद्धान्तों का होना। द्वैतवाद के अनुसार जीव और ईश्वर सदा पृथक् रहते हैं, विशिष्टा द्वैतवाद जीव को ईश्वर का अंश मानता है और अद्वैतवाद के अनुसार जीव व ईश्वर या ब्रह्म एक ही हैं, पृथक नहीं। इस विवाद का भी समाधान श्रीरामकृष्ण ने प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि साधक के विकास की स्थिति के अनुसार तीनों मान्यताएँ सत्य हैं। साधक द्वैत से प्रारम्भ करता है और विशिष्टता द्वैत से होता हुआ अद्वैत तक पहुँचता है। अतः इन तीनों स्थितियों में कोई झगड़ा नहीं है।

चार योगों का समन्वय :

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, श्रीरामकृष्ण ने स्वयं साधना करके ईश्वर को पाने के सभी मार्गों की सत्यता को प्रमाणित किया था स्वामी विवेकानन्द ने विभिन्न प्रकार की साधनाओं का वर्गीकरण चार योगों के अन्तर्गत किया हैं : कर्म-योग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, और राजयोग। कुछ लोगों की मान्यता है कि ये योग एक दूसरे के विरोधी हैं, यथा ज्ञान और भक्ति परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। लेकिन श्रीरामकृष्ण ने अपने जीवन में इन सभी योगों के पूर्ण विकास और साधना द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि ये परस्पर विरोधी नहीं बल्कि एक दूसरे के परिपूरक हैं। श्रीरामकृष्ण एक ही साथ एक श्रेष्ठ ज्ञानी, उत्कृष्ट भक्त, एक सिद्ध योगी तथा आदर्श कर्मयोगी थे। इस प्रकार उन्होंने इन चारों योगों का भी अपने जीवन में अद्भुत समन्वय स्थापित किया है। उनके जीवन का अवलोकन करके ही स्वामी विवेकानन्द ने चार योगों के समन्वय को अपने सन्देश में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

अध्यात्म और व्यवहार :

ऐसा प्रायः समझा जाता है कि अध्यात्मिक-जीवन व्यावहारिक-जीवन के साथ मेल नहीं खाता। धर्म संसार-विरोधी है तथा अध्यात्मिक-जीवनयापन करने वाले लोग सामान्यतः कम व्यवहार-पटु होते हैं। लेकिन श्रीरामकृष्ण ने स्वयं के जीवन में तथा अपने उपदेशों के द्वारा भी यह प्रदर्शित किया है कि आध्यात्मिक-जीवन तथा व्यावहारिक-जीवन परस्पर विरोधी नहीं हैं। इनके बीच कठिनाई इन दोनों को न समझ पाने के कारण होती है। इसे समझाने के लिये श्रीरामकृष्ण 'महावत नारायण' की कथा सुनाते हैं। एक गुरुकुल में गुरुजी ने शिष्यों को उपदेश दिया कि सभी प्राणियों में नारायण हैं। तदनन्तर जंगल से लकड़ी लाते समय अचानक शिष्यों को पुकार सुनाई दी कि एक पागल हाथी चला आ रहा है। सभी शिष्य भाग गये लेकिन एक शिष्य हाथी के मार्ग में खड़ा होकर हाथी-नारायण की स्तुति करने

लगा। हाथी पर बैठे महावत ने चिल्ला कर उसे हट जाने को कहा लेकिन वह हटा नहीं। हाथी ने उसे सूँढ़ से उठा कर दूर फेंक दिया। शिष्य बेहोश हो गया। दूसरे शिष्य उसे उठा कर आश्रम लाये। होश आने पर उस से गुरुजी ने कहा कि वह हाथी के मार्ग से क्यों नहीं हटा था। शिष्य ने गुरुजी को शिक्षा का हवाला देते हुए कहा कि वह हाथी को नारायण जानकर उसकी स्तुति कर रहा था। इस पर गुरुजी ने कहा कि हाथी की तरह महावत भी तो नारायण था, महावत-नारायण की बात मानकर मार्ग से क्यों नहीं हटे ?

एक बार श्रीरामकृष्ण ने अपने एक शिष्य योगीन से एक बर्तन खरीद लाने को कहा। जब वे बर्तन लाये तो वह फूटा हुआ पाया गया। इस पर श्रीरामकृष्ण ने योगीन को डाँटते हुए कहा कि साधु होने का अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति मूर्ख होते तुम्हें बर्तन को अच्छी तरह देख-परख कर लाना चाहिए था। श्रीरामकृष्ण के जीवन तथा उपदेशों से इस तरह के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

आत्मा की मुक्ति और जगत का हित :

साधक के जीवन में एक और समस्या प्रायः उपस्थित होती है। वह संसार को त्याग कर अपनी आत्मा की मुक्ति के लिये प्रयत्नशील होता है। संसार उसे बन्धन प्रतीत होता है। एक ओर उसका व्यक्तिगत-जीवन है तो दूसरी ओर सामाजिक कर्तव्य। इन दोनों का सामंजस्य कैसे बिठाया जाय ? इस सम्बन्ध में भी श्रीरामकृष्ण के उपदेश अत्यन्त व्यावहारिक हैं। वे कहते हैं कि जब संसार के कर्म करो, तो एक हाथ से भगवान को पकड़े रहो और जब संसार के कर्म से निवृत होओ, तब दोनों हाथों से भगवान् को पकड़ लो। जिस प्रकार हाथ में तेल लगा कर कटहल काटने पर उसका रस हाथ में नहीं चिपकता, उसी तरह मन पर ईश्वर भक्ति का तेल लगा कर संसार के कर्म करने से संसार का कलुष मन को स्पर्श नहीं करता। परमात्म-भाव-विरहित मन मानो दूध के समान है, जिसमें संसार रूपी पानी आसानी से घुल मिल जाता है। लेकिन यदि दूध को निर्जन में 'जावन' मिलाकर रखा जाये और जब वह दही बन जाये, तब उसे मथने पर जो मक्खन बनेगा, वह पानी पर तैरता रहेगा। इसी तरह निर्जन में पहले भगवान का ध्यान करने के बाद भक्ति लाभ करके संसार में रहने से निर्लिप्त होकर रहा जा सकता है।

श्रीरामकृष्ण यह भी कहते हैं कि जिस प्रकार आँखें बन्द करके ध्यान किया जाता है, उसी तरह आँखें खोल कर भी ध्यान किया जा सकता है। परमात्मा संसार के सभी प्राणियों में विद्यमान हैं। उनकी सेवा करना परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ उपासना है। स्वामी विवेकानन्द को भी उन्होंने यही उपदेश दिया था कि आँखें बन्द करके भगवान् का ध्यान करने की उपेक्षा दीन-दुःखियों, दरिद्रों के रूप में विद्यमान् भगवान् को सेवा करना श्रेष्ठतर है। शिव ज्ञान से जीव सेवा के द्वारा आत्मा की मुक्ति और जगत् का हित, दोनों ही सध सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीरामकृष्ण ने धर्म और अध्यात्म विषयक सभी विसंगतियों का समाधान प्रस्तुत किया है। सचमुच वे सच्चे अर्थों में एक महान् धर्म-समन्वयक हैं।

●

श्रीरामकृष्ण की अनमोल शिक्षा

—वीणा पाणि मिश्र

(जे०एन०कालेज, राँची)

विश्व के महान आध्यात्मिक गुरुओं ने हमेशा आडम्बर शून्य सरल भाषा के माध्यम से अपनी बात कही है। उन्होंने सरल किस्से कहानियों द्वारा जगत को शिक्षा दी है। श्री रामकृष्ण भी इसके अपवाद नहीं थे। उनकी कुछ अनमोल शिक्षाएँ निम्नलिखित कथाओं के माध्यम से व्यक्त होती हैं।

किसी जंगल में एक सत्पुरुष अपने शिष्यों के साथ रहा करते थे। एक दिन उन्होंने अपने शिष्यों को बताया—सभी जीवों में ईश्वर विद्यमान हैं। इसे जानते हुए सबके प्रति विनम्र रहो'। एक बार एक शिष्य यज्ञ के लिये लकड़ियाँ लाने जंगल गया अचानक आवज सुनाई दी, 'सभी रास्ते से हट जायँ, एक पागल हाथी आ रहा है। उस एक शिष्य को छोड़कर अन्य व्यक्ति भाग खड़े हुए। शिष्य ने मन ही मन तर्क किया 'हाथी भी तो ईश्वर का ही रूप है, अतः भागने की क्या जरूरत है' और यह सोचकर वह हाथी के सामने सिर झुकाकर उसका गुणगान करने लगा। तभी महावत चिल्लाया 'भागो भागो' लेकिन शिष्य तब भी खड़ा रहा। तभी हाथी ने अपनी सूंढ से उसे ऊपर उठाया और दूर पटक दिया। शिष्य अचेत हो गया। यह सब सुनकर उसके गुरु अपने शिष्यों के साथ जाकर उसे अपनी कुटिया में ले आये। कुछ उपचार के पश्चात् उसे जब चेतना हुई तो एक शिष्य ने उससे पूछा, जब तुम जान रहे थे पागल हाथी आ रहा है, फिर भी तुम अपने स्थान से क्यों नहीं हटे? "लेकिन हमारे गुरु ने तो बताया था कि ईश्वर ने ही सभी जीवों का रूप धारण किया है और इसलिये यह सोचकर कि हाथी के रूप में ईश्वर ही आ रहा है, मैं नहीं भागा," शिष्य ने जवाब दिया। उसके इस उत्तर पर गुरु ने जवाब दिया 'यह सत्य है कि हाथी रूपी भगवान आ रहा था, पर महावत रूपी भगवान ने तो वहाँ से तुम्हें हटने को कहा था। चूँकि सभी जीवों में ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है तुमने महावत के शब्दों का विश्वास क्यों नही किया? तुम्हें महावत रूपी ईश्वर की बात माननी चाहिये थी।'

ईश्वर निः सदेह सज्जन, दुर्जन, दुष्ट तथा पापियों की संगति नहीं करनी चाहिये।

ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो इस संबंध में श्री रामकृष्ण द्वारा वर्णित नीचे लिखा प्रसंग महत्त्व रखता है।

एक शिष्य ने अपने गुरु से पुछा कृपया मुझे बतायें- ईश्वर का साक्षात्कार मैं कैसे कर सकता हूँ? गुरु ने उत्तर में कहा—मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें ईश्वर दर्शन कराऊँगा। गुरु शिष्य को साथ लेकर एक झील के पानी में उतर पड़े। अचानक गुरु ने शिष्य का सिर पकड़ पानी के अंदर डुबा दिया। कुछ क्षणों के पश्चात् उन्होंने उसे छोड़ दिया तब शिष्य ने घबड़ाते हुए अपना सिर ऊपर उठाया। गुरु ने

पूछा 'तुम्हें कैसी अनुभूति हुई' शिष्य ने उत्तर दिया 'ओह मुझे तो लगा मैं मरने वाला हूँ मेरी सांसे बंद हो रही थीं'। गुरु ने कहा जब इसी तरह की व्यग्रता तुम्हें ईश्वर प्राप्ति के लिये होगी, तो फिर ईश्वर दर्शन के लिये तुम्हें प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी।

सारांश यही है कि किसी व्यक्ति को दर्शन के लिये अत्यधिक व्यग्र देखो तो जान लो उसके ईश्वर दर्शन में विलम्ब नहीं है।

श्रीरामकृष्ण ने अपनी जन्मस्थली कामारपुकुर के सरल दृष्टान्त के आधार पर सांसारिक मनुष्यों को इस संसार में अपना कार्य सम्पादन करने की सलाह दी है।

उन्होंने ग्राम की ढेकी द्वारा चूड़ा कुटने वाली स्त्रियों का उदाहरण देते हुए बताया है कि एक औरत धान को एक हाथ से गड्ढे में डालती जाती है, दूसरे हाथ से अपने बच्चे को संभालती हुई उसकी देखभाल करती है। उसी समय ग्राहक आ पहुँचते हैं। ढेकी द्वारा धान कुटने की क्रिया जारी रहती है, वह ग्राहक से मोलभाव भी करती जाती है। वह उससे कहती है 'पहले मुझसे लिये उधार चुकता करो फिर कुछ और लेने की बात करना।' यहाँ वह स्त्री अनेक कार्य साथ-साथ सम्पादित करती है—गोद के बच्चे की देखभाल, धान को गड्ढे में डालना, चुडा बनने पर उसे गड्ढे से निकालना और ग्राहक से बातें करना। यही तो योगाभ्यास है। उसके मन के सोलह भागों में से पन्द्रह धान कुटने वाले यंत्र पर रहते हैं अन्यथा उसके हाथ कुचल जायेगें। मन का सिर्फ एक भाग बच्चे की देखभाल तथा ग्राहक से बात करने में लीन है। ठीक उसी तरह एक सांसारिक मनुष्य को मन के पन्द्रह भागों को ईश्वर के निर्वाह के लिए मन का एक हिस्सा ही पर्याप्त है।

विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय अल्लाह या ईश्वर या कृष्ण या शिव या ब्रह्म ही सत्यता में विश्वास करते हैं। विभिन्न धर्मावलम्बी भले ही भिन्न-भिन्न सत्ताओं में, सत्यता में, विश्वास करें, परन्तु ईश्वर सिर्फ एक है, दो भी नहीं है। यह झील के जल के समान है। कुछ व्यक्ति इसके एक तट पर अपनी प्यास बुझाकर इसे 'जल' कहते हैं। दुसरे तट के व्यक्ति इसे 'पानी' कहते हैं तो तीसरे तट पर खड़े व्यक्ति इसे 'वाटर' कहते हैं। हिन्दू इसे 'जल' ईसाई इसे 'वाटर' और मुसलमान इसे 'पानी' कहकर पुकारते हैं। लेकिन है तो वह एक ही चीज।

समस्त धर्म ही सत्य है। जितने मत हैं उतने ही पथ हैं। प्रत्येक धर्म सिर्फ ईश्वर को प्राप्त करने का रास्ता है ठीक उसी तरह जिस तरह विभिन्न दिशाओं से नदियाँ निकलती है और अन्ततः एक ही समुद्र में विलिन हो जाती हैं। श्री रामकृष्ण के मुख से ही सर्वप्रथम इस महान् उदार संदेशक को सुनकर ससार मुग्ध हुआ है।

सांख्य दर्शन की जटिलता को जिस सरलता से उन्होंने एक बार सुलझाया वह अविस्मरणीय है। पुरुष एवं प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति के बारे में चर्चा करते हुए श्री रामकृष्ण ने कहा—सांख्य दर्शन का कथन है कि पुरुष(आत्मा)अकर्त्ता है,वह कुछ भी नहीं करता। प्रकृति ही सब कुछ किया करती है, पुरुष साक्षी बनकर प्रकृति के उन कार्यों को देखा करता है, प्रकृति भी पुरुष को छोड़कर स्वयं कोई कार्य करने में समर्थ नहीं है। श्रोताओं का तो कहना ही क्या वे सब के सब पंडित ठहरे—कोई ऑफिसमें काम करनेवाले बाबू या कर्मचारी अथवा डाक्टर, वकील या डिप्टी हैं, अथवा स्कूल कॉलेज में पढ़नेवाले विद्यार्थी हैं : इसलिये उनकी बातों को सुनकर वे एक-दूसरे की ओर ताकने लगे। उनकी उस स्थिति को देखकर श्री रामकृष्ण देव बोले, "अरे भाई जिस घर में विवाह होता है क्या तुमने वहाँ की स्थिति नहीं देखी है? गृहस्वामी

आदेश प्रदान कर स्वयं बैठे हुए तम्बाकू पी रहे हैं, किन्तु घर में गृहिणी, जिसके कपड़े में हल्दी के दाग हैं, एक बार इधर, एक बार उधर दौड़ रही है—यह कार्य हुआ या नहीं, उस कार्य को किया गया या नहीं, यह सब कुछ देखभाल कर रही है : घर पर जो महिलाएँ आ रही हैं, उनकी भी अभ्यर्थना कर रही है और बीच-बीच में गृहस्वामी के समीप उपस्थित हो हाथ सिर हिलाती हुई—'अमुक कार्य इस प्रकार किया गया है, अमुक उस तरह सम्पन्न हुआ है, इस कार्य को करना है, उसे करने की आवश्यकता नहीं है, इत्यादि बातें उनसे कहती जा रही है। गृहस्वामी तम्बाकू पीते हुए उन बातों को सुन रहे हैं और हुँकारी भरते हुए केवल सिर हिलाकर अपनी सम्मति प्रदान कर रहे हैं। इसे भी उसी तरह समझना चाहिये।" श्री रामकृष्ण देव की बातों को सुनकर सब कोई हँसने लगे तथा सांख्य-दर्शन का तात्पर्य हृदयंगम कर सके।

श्री रामकृष्ण देव ने संसार को जो धर्म मधु प्रदान किया इससे पूर्व उसका अमृतमय आस्वाद कभी प्राप्त नहीं हुआ। जिस महान् धर्मशक्ति का संचय कर उन्होंने अपने शिष्यवर्ग में उसे संचारित किया है जिसके प्रबल उच्छ्वास से बीसवीं सदी के विज्ञान के आलोक में भी लोग धर्म को भी एकदम प्रत्यक्ष विषय समझने लगे हैं और सब धर्मों के भीतर एक अपरिवर्त्तनशील जीता जागता सनातन धर्म स्रोत प्रवाहित होते देख रहे हैं—क्या इससे पूर्व संसार ने और कभी उस शक्ति का अभिनय देखा है ? जैसे वायु एक फूल से दूसरे फूल की ओर जाती है, वैसे ही मानव जीवन क्रमशः एक सत्य से दूसरे सत्य पर पहुँचता हुआ एक अपरिवर्तनीय अद्वैत सत्य की ओर धीरे-धीरे अग्रसर हो रहा है और एक दिन ऐसा आयेगा जब वह उस अनन्त, अपार सत्य की निश्चित उपलब्धि कर पूर्ण-काम बन जायगा—क्या कभी संसार में इसके पहले यह अभयवाणी सुनी गई है ?

हिंदू स्त्री के लिए सतीत्व का अर्थ समझना ही है, क्योंकि यह उसकी विरासत है, परम्परागत सम्पत्ति है। इसलिए सर्वप्रथम यह ज्वलन्त आदर्श भारतीय नारी के हृदय में सर्वोपरि रहे, जिससे वे इतनी दृढ़चरित्र बने जायँ कि चाहे विवाहित हों या कुमारी, जीवन की हर अवस्था में अपने सतीत्व से तिल भर भी डिगने की अपेक्षा, जीवन की निडर होकर आहुति दे दें।···साथ-साथ, महिलाओं को विज्ञान एवं अन्य विषय, जिनसे कि केवल उनका ही नहीं, अन्य लोगों का भी हित हो, सिखाये जायें।

—स्वामी विवेकानन्द

गृहस्थों के श्रीरामकृष्ण

—मोहन सिंह मनराल
अलमोड़ा (उ० प्र०)

गृहस्थ मानव के लिए शान्ति व आनन्द का आध्यात्म पथ दुर्गम, दुरुह, दुसाध्य व दुबोध माना जा सकता है क्योंकि उसके लिए पग पग पर पतन व बाधायें हैं। संसार रूपी इस जंगल में कहाँ, कब, कैसे रास्ता भटक जाय कुछ समझ नहीं आता। अत: इसके लिए सबसे अधिक सहायक, कृपा, दया, करुणा, सेवा व सहानुभूति की आवश्यकता है। क्या यही कारण नहीं कि करुणाधन, कोमल व विशाल हृदय के धनी स्वामी विवेकानन्द ने इन्हीं पापी, तापी, मुर्ख व गँवार लोगों को अपना उपास्य देव स्वीकार किया? क्या यही कारण नहीं कि वे इनके लिए बार-बार जन्म-लेने को राजी हो गये। क्या यही कारण नहीं कि वे भगवान् श्री-रामकृष्ण देव के पास ऐसे लोगों को खींचकर ले आते और उनके लाख मना करने पर भी कहते प्रभु यदि आप इनपर कृपा नहीं करेंगे तो ये लोग जायेंगे कहाँ? क्या यही कारण नहीं कि श्रीराम-कृष्ण देव ने बाद में स्वामी जी को इन्हीं लोगों के कल्याण में लगा दिया।

निश्चय ही यही कारण आज भी विद्यमान है, आज के भौतिकवादी युग में जबकि धन ही मानव की सारी गतिविधियों का केन्द्र होता चला जा रहा है यह आवश्यक और अधिक तीव्रता से सामने आ रही है। मगर कौन उस त्रस्त मानव से ऐसी सहानुभूति रखता है? स्वामी जी जैसा हृदय अब कहाँ है? सर्वत्र यही देखने को मिलता है कि जो दीनहीन, दुर्बल, पापी, तापी, शोषित और सामर्थ्यहीन हैं उसके उठाने का कोई मार्ग नहीं है। उसके लिए आज की उपेक्षा, तिरस्कार व अन्याय का साम्राज्य है। कौन उसके आँसू पोछेगा? मात्र कोरे सिद्धान्त व आदर्शवाद इसके किसी काम के नहीं ठीक उसी तरह जैसा श्रीरामकृष्ण देव के एक गृही भक्त गिरीशचन्द्र घोष ने कहा था ठाकुर इन उपदेशों से मेरा कुछ होने का नहीं। मैंने ऐसे अनेक उपदेश लिपिबद्ध कर रखे हैं। मेरे लिए कुछ ठोस करके दिखाइये।

आज के युग में श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा गृहस्थ मानव के लिए आगे बढ़ने का एक शक्तिशाली आधार प्रस्तुत करती है मगर समस्या वही है—किस प्रकार व्यक्ति अपने काम्यप्रधान जीवन से मुक्ति प्राप्त करे? काम्यप्रधान जीवन गृहस्थ मानव की विवशता है उसका उद्देश्य नहीं है। किसी सीमा तक इसे उसकी न तो आवश्यकता है न ही यह वांछनीय है। ऐसे में उसे श्रीरामकृष्ण के अमृत उपदेशों की ओर झुकने का आग्रह अपने भीतर से प्राप्त होता है क्योंकि वह स्वयं महसूस करता है कि सारी सुख-सुविधायें लाकर भी उसकी खोज का अन्त नहीं हुआ। उसका असंतोष मिटा नहीं; क्यों?

ऐसे में उसके आगे श्रीरामकृष्ण देव का वचनामृत आता है जो मात्र कोरा उपदेश नहीं है जिसे लिपिबद्ध करके रख लिया जाय। वह तो साक्षात् जीवन दर्शन है जिसपर एक कदम रखने से यात्रा अवश्य ही चल पड़ेगी और परिणाम तो

हस्तगत होगा ही। अब हम उसी के साथ इस समस्या का समाधान चाहेंगे।

क्या गृहस्थाश्रम में भगवान लाभ संभव है ?

इस प्रश्न के उत्तर में श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—"हो सकता है, परन्तु है बड़ा कठिन।" क्योंकि पग-पग पर गिरने का भय है। कामिनि-कंचन की आसक्ति ही विघ्न है। विषय तृष्णा ही सबसे बड़ी बाधा है। विषय चिन्तन व विषय भोग यही संसारी की कठिनाई है। जिधर जाओ कोई न कोई बला आ खड़ी होती है। स्त्री प्रसंग तो कीचड़ में डुबने के समान है, वह समझ ही नहीं पाता कि कितने नीचे उतर गये हैं। सन्निपात के रोगी की भांति सोचते हैं, मैं ठीक हूँ। मगर जिसे भूत पकड़ता है उसका यही हाल होता है। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—"संसार करने पर मन की शक्ति का अपव्यय होता है। कामिनी और कांचन ये ही दो विघ्न हैं। स्त्री की आसक्ति पुरुष को ईश्वर के मार्ग से डिगा देती है।"

परन्तु एक बार भी वे किसी भी प्रश्न के उत्तर में किसी से यह नहीं कहते हैं कि संसारियों के लिए कोई उपाय नहीं है। वरन वे तो कहते हैं, यदि तीव्र वैराग्य हो तो हो सकता है। कुछ काल निर्जन में रहना पड़ता है। निर्जन में रहकर यदि भक्ति मिली हो उसके बाद सहज ही संसार में जाकर रह सकेंगे।" अर्थात् पहले ज्ञान व भक्ति बाद में संसार। यदि संसार पहले आ जाय तो बड़ा कठिन है और यही जगत की व्यावहारिकता है, इसलिए तमाम उपदेशों, साधनों व सत्संग के बावजूद संसार में रहने वाले मानव के लिए यह पथ आकाशकुसुम ही बना हुआ है।

पहले संसार के बाद श्रीरामकृष्ण देव के उपदेश मात्र आदर्श ही लगेंगे वे व्यवहार में कभी उतर नहीं पायेंगे। अब श्रीठाकुर ने कहा है—"कीचड़ में रहनेवाली मछली की तरह रहो। वह कीचड़ में रहती है पर उसके शरीर में कीचड़ नहीं लगता। और अ-सती स्त्री की तरह रहो जो घर का सारा कामकाज करती है पर उसका मन अपने उपपति की ओर रहता है। ईश्वर में मन लगाकर गृहस्थी का सब काम करो। परन्तु यह है बड़ा कठिन।"

कठिन इसलिए कि संसार पहले आ घुसा है अब भक्ति व वैराग्य के लिए स्थान बचा ही नहीं है इसलिए जो कठिनाई उत्पन्न हुई उसने संसार से तो नहीं ईश्वर से वैराग्य करवा दिया है। यही जगत का यथार्थ दिखाई पड़ता है। मगर इस स्थिति को तो बदलना होगा और यह अनन्तकाल तक चल भी नहीं सकेगी। तब अवश्य ही श्रीरामकृष्ण देव की 'भक्ति व वैराग्य" को बात पर दृष्टि जायेगी तब संसार हार चुका होगा और साथ ही जीवन भी पर यह भाव तक भी मजबूत ही रहेगा कि—उसके लिए उपाय है। उसकी संभावनायें मृत नहीं हुई हैं वरन् वे और उजागर हो गई हैं। वास्तविकता तो यह है कि जब मन की ऐसी अवस्था होगी तभी वह तेजी से चल पड़ेगा उस योग के पथ पर जिनके बिना इस मार्ग में प्रवेश असंभव है। जैसा श्रीरामकृष्ण ने कहा है—"बात यह है कि मन स्थिर न होने से योग नहीं होता। मन स्थिर होने पर वायु स्थिर होती है – उससे कुम्भक होता है। वह कुम्भक भक्ति योग से भी होता है। भक्ति से वायु स्थिर हो जाती है।"

भक्ति ही सार है :—

भक्ति के बिना गिरने की प्रबल सम्भावना है मगर भक्ति रहने से गिर-गिर कर भी उठने की सम्भावनायें बनी रहती हैं। अब जबकि प्राण अन्नगत हैं, मानव अपनी तमाम दुर्बलताओं व दिशाहीनता का शिकार है उसके लिए श्रीरामकृष्ण की यह आशावाणी मील का पत्थर सिद्ध होगी ऐसा न मानने का कोई कारण नहीं है।

"भक्ति ही सार है। सच्चे भक्त को कोई भय कोई चिन्ता नहीं। माँ सबकुछ जानती है। बिल्ली चूहा पकड़ती है विशेष प्रकार से परन्तु अपने बच्चे को पकड़ती है दूसरे प्रकार से।" गृहस्थ मानव यदि अपने हृदय में इस 'भक्ति व वैराग्य' के बीज को जगा पाने में सफल होता है तो निश्चय ही उसे किसी बात की चिन्ता नहीं। माना कि उसका भाग्य रुठ गया। माना कि उसका जीवन पतन के गर्त में गिर पड़ा है। माना कि उसे यह प्रतीत हो कि अब इस अँधियारी रात का कभी सवेरा नहीं होगा परन्तु उसके लिए सम्भावनाऐं जिन्दा हैं और अवश्य लम्बी, काली अँधियारी रात का कोई न कोई सवेरा होगा और वह सवेरा उसके भीतर से ही आयेगा उस दिन वह स्वामी जी की वाणी का मर्म समझ पायेगा कि जो कुछ बल, शक्ति चाहते हो सब तुम्हारे भीतर है। अपने हाथों अपना भविष्य गढ़ लो। निश्चय ही एक नये प्रभात का शुभ उदय भक्ति का स्वयं फलित प्रभात होगा क्योंकि उसे सभी साधनों का मूल, साधन व साध्य बतलाया गया है।

● ईश्वर-दर्शन के विषय में श्रीमाँ ने कहा :

"जानते हो बेटा, यह कैसा होता है ? यह तो मानो एक बच्चे को हाथ की मिठाई नहीं देना। किन्तु वह जिसको चाहता है, उसे बड़ी सरलता से दे देता है। एक व्यक्ति जीवन भर ईश्वर-दर्शन के लिए कठोर तपस्या और साधना करता है पर उसे सफलता नहीं मिलती जबकि दूसरे व्यक्ति को बिना किसी प्रयास के उनके दर्शन हो जाते हैं। वे जिसे चाहते हैं उस पर ही कृपा करते हैं। उनकी कृपा ही महत्वपूर्ण वस्तु है।"

● जिसने भी सच्चे मन से ईश्वर को एक भी बार पुकारा है उसे कोई भय नहीं है। उन्हें निरन्तर पुकारते रहने से प्रेमाभक्ति की प्राप्ति होती है। बेटा, यह प्रेम ही आध्यात्मिक जीवन का सार है। वृन्दावन की गोपियों ने इसे प्राप्त किया था। वे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त संसार को किसी भी वस्तु को नहीं जानती थी।

● कुण्डलिनी का जागरण धीरे धीरे होता है। तुम ईश्वर के नाम का जप करके सब कुछ प्राप्त कर सकते हो। भले ही मन शान्त न हो, तब भी तुम बैठकर उनके मन्त्र का एक लाख बार जप कर सकते हो। कुण्डलिनी-जागरण के पहले अनाहत नाद सुनाई देता है। पर जगन्माता की कृपा के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।

● प्रश्न : माँ, मैंने इतना अधिक जप-तप किया है, पर मुझे तो कुछ भी नहीं मिला !

उत्तर : भगवान् कोई मछली या तरकारी नहीं हैं बेटा, जो तुम उन्हें दाम चुकाकर खरीद लो।

—माँ सारदा

शिवरात्री और देवाधिदेव महादेव

—सत्यनारायण चतुर्वेदी

शिवरात्रि का व्रत प्रत्येक वर्ष फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष में त्रयोदशी के दिन होता है तथा कुछ लोग इस व्रत को चतुर्दशी को भी करते हैं। ऐसा माना जाता है कि सृष्टि के आदि में इसी दिन भगवान् शंकर का ब्रह्मा से रुद्र के रूप में रात्रि के मध्य में अवतरण हुआ था। प्रलय की वेला में इसी दिन प्रदोष के समय भगवान् शिव तांडव करते हुए ब्रह्माण्ड को तीसरे नेत्र को ज्वाला समाप्त कर देते हैं। इसलिए इसे महाशिवरात्री अथवा कालरात्रि कहा गया है। शिवतत्व का प्राकट्य और उनके स्वरूप तथा त्रिदेवों में उनकी एकता का वर्णन शिवपुराण, रुद्र संहिता में इस प्रकार है—ब्रह्माजी नारद से कहते हैं कि भगवान् विष्णु के द्वारा की हुई अपनी स्तुति सुनकर करुणा-निधि महेश्वर बहुत प्रसन्न हुए और उमा देवी के साथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये। उस समय भगवान् शिव के पाँच मुख थे और प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्रशोभा पा रहे थे। भालदेश में चन्द्रमा का मुकुट सुशोभित हो रहा था। सिर पर जटा धारण किये, गौरवर्ण, विशाल नेत्र शिव ने अपने सम्पूर्ण अंगों में विभूति लगा रखी थी और उनकी दस भुजाएं थी। कण्ठ में नील चिह्न था तथा उनके श्रीअंग सभी आभूषणों से विभूषित थे। उन सर्वांग सुन्दर शिव के मस्तक भस्ममय त्रिपुण्ड से अंकित थे। ऐसे विशेषणों से युक्त परमेश्वर महादेव को भगवती उमा के साथ देख मैंने और विष्णु ने पुनः प्रिय वचनों से उनकी स्तुति की, त. कालों के काल महाकाल शिव ने प्रसन्नचित होकर श्री विष्णु जी को श्वास रूप से वेद का उपदेश दिया और उसके बाद शिव ने श्री विष्णु को गुह्य ज्ञान प्रदान किया। तब फिर शिव ने वह ज्ञान मुझे भी दिया और वेद का ज्ञान प्राप्त करने के बाद हम दोनों शिवजी से हाथ जोड़कर पूजन की विधि बताने तथा सदुपदेश देने के लिए आग्रह किया।

हम दोनों की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने यह बात कही—'मैं तुम दोनों की श्रद्धा-भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हूँ और तुम लोग मुझ महादेव की ओर देखो। इस समय तुम्हें मेरा स्वरूप जैसा दिखाई देता है, वैसे ही रूप का पूजन-चिन्तन करना चाहिये। तुम दोनों स्वयं महाबली हो और मेरी स्वरूपभूता प्रकृति से प्रकट हुए हो। मुझ परमेश्वर के दायें-बायें अंगों से आविर्भाव हुआ है। ये लोकपितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने पार्श्व से उत्पन्न हुए हैं और बिष्णु मेरे वाम पार्श्व से प्रकट हुए हैं। मैं तुम दोनों पर भलीभाँति प्रसन्न हूँ और तुम्हें मनोवांछित वर देता हूँ। मेरी आज्ञा से तुम दोनों की मुझमें सुदृढ़ भक्ति हो तथा ब्रह्मा जी मेरी आज्ञा का पालन करते हुए जगत् की सृष्टि करें और विष्णु जी इस चराचर जगत् का पालन क ते रहें।' इस प्रकार से हमें और विष्णु को भगवान् शंकर ने पूजन की उत्तम विधि बतायी।

श्री विष्णु बोले—'प्रभो! यदि हमारे प्रति आपके हृदय में प्रेम है और हमें आप वर देना चाहते हैं तो हम सिर्फ यही वर मांगते हैं कि आपमें

हम दोनों को अनन्य एवं अविचल भक्ति बनी रहे।' इसके बाद ब्रह्मा जी भी कहते हैं—'श्रीहरि ने यह उत्तम बात कही है।' भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी के बातों को सुनकर भगवान् महेश्वर अर्थात् शिव बोले—'मैं सृष्टि, पालन और संहार का कर्त्ता हूँ। मैं सच्चिदानन्द-स्वरूप निर्विकार परब्रह्म परमात्मा हूँ। सृष्टि, रक्षा और प्रलयरूप गुणों तथा कार्यों के भेद से मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण करके तीन स्वरूपों में विभक्त हुआ हूँ। तुमने और ब्रह्मा ने मेरे अवतार के निमित्त जो स्तुति की है, उस प्रार्थना को मैं अवश्य ही सच करूँगा, क्योंकि मैं भक्तवत्सल हूँ। मेरा ऐसा ही एक परम उत्कृष्ट रूप तुम्हारे शरीर से इस लोक में प्रकट होगा, जो नाम से 'रुद्र' कहलायगा। मेरे अंश से प्रकट हुए रुद्र की सामर्थ्य मुझसे कम नहीं होगी। जो मैं हूँ, वे ही यह रुद्र हैं। पूजा के विधि-विधान की दृष्टि से भी मुझमें और उनमें कोई अन्तर नहीं है। जैसे ज्योति का जल आदि के साथ सम्पर्क होने पर भी उसमें स्पर्श दोष नहीं लगता है, उसी प्रकार मुझ निर्गुण परमात्मा को भी किसी के संयोग से बन्धन नहीं प्राप्त होता। यह मेरा साक्षात् शिव रूप है। जब रुद्र प्रकट होंगे तब वे भी शिव के ही तुल्य होंगे। अतः शिव और रुद्र में कभी भेद नहीं करना चाहिये। मूलतः सारा दृश्य ही मेरे विचार से शिवरूप है।'

मैं, तुम और ब्रह्मा तथा ये जो रुद्र प्रकट होंगे, वे सब के सब एक ही अनेक रूप हैं। इनमें कोई भेद नहीं है। भेद मानने पर अवश्य ही बन्धन होगा। फिर भी मेरा शिवरूप ही सनातन है। यही सदा सब रूपों का मूल कहा गया है। यह सत्य, ज्ञान एवं अनन्त ब्रह्म है—'मूलीभूतं सदोक्तं च सत्यज्ञानमनन्तकम्।' (शिवपु० रुद्र सं० ९/४०)। ऐसा समझकर सदा मन से मेरे यथार्थ स्वरूप का दर्शन करना चाहिये। तुम दोनों सुनो, मैं एक गोपनीय बात बता रहा हूँ। मैं स्वयं ब्रह्माजी की भृकुटि से प्रकट होऊँगा। गुणों में भी मेरा प्राकट्य कहा गया है। जैसा कि लोगों ने कहा है कि हर 'तामस' प्रकृति के हैं। वास्तव में उस रूप में अहंकार का वर्णन हुआ है। उस अहंकार को केवल तामस ही नहीं, बल्कि वैकारिक अथवा सात्विक भी समझना चाहिये क्योंकि सात्विक देवगण वैकारिक अहंकार की सृष्टि हैं। यह तामस और सात्विक आदि भेद केवल नाममात्र का है, वास्तविकता नहीं है। वस्तुतः 'हर' को तामस नहीं कहा जा सकता। ब्राह्मण! इस कारण से तुम्हें ऐसा करना चाहिये कि तुम तो इस सृष्टि के निर्माता बनो और श्री हरि इसका पालन करें तथा मेरे अंश से प्रकट होने वाले जो रुद्र हैं, वे इसका प्रलय करने वाले होंगे। ये जो 'उमा' नाम से विख्यात परमेश्वरी प्रकृति देवी हैं, इन्हीं की शक्ति भूता वाग्देवी ब्रह्मा जी का सेवन करेंगी। फिर इस प्रकृति देवी से वहाँ जो दूसरी शक्ति प्रकट होगी, वे लक्ष्मीरूप से भगवान् विष्णु का आश्रय लेंगी। क्रमशः पुनः काली नाम से जो तीसरी शक्ति प्रकट होगी, वह निश्चय ही मेरे अंशभूत रुद्रदेव को प्राप्त होगी और वह कार्य की सिद्धि के लिए वहाँ ज्योतिरूप से प्रकट होगी। इस प्रकार मैंने देवी की शुभस्वरूपा पराशक्तियों का परिचय दिया। उनका कार्य क्रमशः सृष्टि, पालन और संहार का ही है।

अतः भगवान् शिव ने पुनः ब्रह्मा जी और विष्णु जी को निर्देश दिया कि भगवान विष्णु लक्ष्मी जी का सहारा लेकर कार्य करें और ब्रह्मा जी अंशभूता वाग्देवी को लेकर मेरी आज्ञा से सृष्टि का कार्य संचालन करें तथा मैं अपनी प्रिया की अंशभूता काली का आश्रय लेकर रुद्ररूप से प्रलय संबंधी उद्दाम कार्य करूँगा। तुम ज्ञान-

विज्ञान से सम्पूर्ण लोकों के हितैषी बनकर अपने विविध कार्यों द्वारा चारो वर्णों से भरे हुए संसार की सृष्टि, पालन एवं रक्षा आदि करके सुख पाओगे। अब मेरी आज्ञा से जगत् में सब लोगों के मुक्तिदाता बनो। मेरा दर्शन होने पर जो फल प्राप्त होगा, वही तुम्हारा दर्शन होने पर भी होगा। मेरे हृदय में विष्णु और विष्णु के हृदय में मैं हूँ. जो इन दोनों में अन्तर नहीं समझता, वहाँ मुझे विशेष प्रिय है—'ममैव हृदये विष्णु-विष्णोश्चहृदये ह्यह्य, उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम। (शि० पु० रू० सं० ९/५५ ५६)

भगवान् शंकर ने पुनः ब्रह्मा और विष्णु जी को समझाते हुए कहा—ब्रह्मा का प्राकट्य दाहिने अंग से हुआ है और महाप्रलयकारी विश्वात्मा रुद्र मेरे हृदय से प्रादुर्भूत होंगे। मैं ही सृष्टि, पालन और संहार करने वाले रज आदि त्रिविध गुणों द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम से प्रसिद्ध हो तीन रूपों में पृथक्-पृथक् प्रकट होता हूँ। तीनों लोकों का पालन करनेवाले श्री हरि के अन्दर तमोगुण और बाहर सत्वगुण धारण करते हैं, त्रिलोकी का संहार करने वाले रुद्रदेव भीतर सत्व-गुण और बाहर तमोगुण धारण करते हैं तथा त्रिभुवन की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी बाहर और भीतर से रजोगुणी ही हैं। मेरी आज्ञा से विधि-पूर्वक सृष्टि एवं पालन करें, ऐसा करने से तीनों लोकों में पूजनीय होओगे।

अतः इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र—इन तीन देवताओं में गुण हैं परन्तु शिव गुणातीत माने गये हैं। साक्षात् शिव गुणों से भिन्न हैं। वे प्रकृति और पुरुष से भी परे हैं—अद्वितीय, नित्य, अनन्त, पूर्ण एवं निरंजन परब्रह्म परमात्मा हैं। वैसे तो अब 'शिव-पार्वती' विवाह का प्रतीकात्मक रूप ही 'महाशिवरात्री' है। स्मरणीय है कि 'कुण्डलिनी' शान्तिमय मध्य रात्रि में ही ठीक से संचालित होती है और शिव-पार्वती-विवाह भी मध्य रात्रि में होता है।

(२५ फरवरी, महाशिवरात्रि से साभार—सं०)

● अपने हृदय की गहराई से ईश्वर के नाम का जप करो और पूरी श्रद्धा से ठाकुर के शरणागत हो जाओ। इस बात की चिन्ता मत करो कि तुम्हारा मन इधर-उधर की चीजों में कैसे उलझा हुआ है। तुम अध्यात्मपथ पर आगे बढ़ रहे हो अथवा नहीं, यह सब गुनने-विचारने में समय मत गँवाओ। अपनी प्रगति का स्वयं मूल्यांकन करना अहंकार है। अपने गुरु और इष्ट की कृपा पर विश्वास रखो।

● प्रश्न : मुझ पर ईश्वर की कृपा कब होगी ?

उत्तर : ऐसा कोई नियम नहीं है कि अगर कोई तपस्या कर रहा है तो उस पर ईश्वर की कृपा होगी ही। प्राचीन काल में ऋषियों ने हजारों वर्ष तक शीर्षासन करते हुए धूनी जलाकर तपस्या की थी। इतना होते हुए भी उनमें से कुछ को ही ईश्वर की कृपा प्राप्त हुई।

—माँ सारदा

हुंकारो फिर एक बार

—विशुद्धानन्द

अब हुंकारो फिर एक बार, हे अभयंकर भोले शंकर !
हो सत्य-शिवत्व पुनः भू पर, सम कर दो विषम विश्व सत्वर !!

अब चिर समाधि त्यागो, जागो
जग पड़ें सकल गण, गणाधीश
यदि जगे हुए हों, त्याग लास्य
ताण्डव पर पद-तल धरो ईश

डम-डम निनाद डमरू का हो, शृङ्गा-ध्वनि से कम्पित अम्बर !
अब हुंकारो फिर एक बार, हे अभयंकर भोले शंकर !!

हे रुद्र, तीसरे नयन-ज्वाल से,
भस्म हुआ था 'मार' एक,
अब काम, क्रोध, मद लोभ मोह के
प्रकटे वृत्रासुर अनेक

वह त्रिविध ताप नाशक त्रिशूल, है कहाँ ? उठाओ अपने कर !
अब हुंकारो फिर एक बार, हे अभयंकर भोले शंकर !!

है अर्थ-हेतु पग-पग अनर्थ
है बलत्कृता धरणी उदार
सर्वत्र प्रदूषित मानस का
वर्चस्व बढ़ा, करती पुकार

उद्धार करो हे महादेव, नटराज, शक्तिवर, गंगाधर !
अब हुंकारो फिर एक बार, हे अभयंकर भोले शंकर !!

हे साम्ब-सदाशिव सृष्टि हेतु
अब दृष्टि तुम्हारी आवश्यक
धरणी-धर के सिर-भार हेतु
है वृष्टि अनल की आवश्यक

हो पुनः धरा का नवोन्मेष, इसलिए प्रलय हो प्रलयंकर ?
अब हुंकारो फिर एक बार, हे अभयंकर भोले शंकर !!

□

श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्यों की बातें

□ स्वामी निर्वाणानन्द

अनुवादक— स्वामी चिरन्तनानन्द

(उद्‌बोधन के अषाढ़-६ जून १७७६ से अनूदित)

त्याग, तपस्या, संयम, विवेक-वैराग्य एवं सच्चरित्रता मनुष्य की वास्तविक संपत्ति है। ये सम्पत्ति न रहने से आध्यात्मिक जीवन की उन्नति असंभव है। उन्नति तो दूर की बात है, इसे छोड़कर अध्यात्मिक जीवन गठन करना ही संभव नहीं है। स्वार्थपरता, अहंकार, अभिमान, हिंसा-द्वेष, परचर्चा, परनिन्दा अध्यात्मिक जीवन की प्रबल बाधा हैं। इसका त्याग करना चाहिए। कुसंग एवं तुच्छ काम-वासना के पीछे दौड़ने से कुछ भी नहीं होगा। साधन-भजन में प्रीति, त्याग-तपस्या, विवेक-वैराग्य एवं विचार न रहने से शान्ति अथवा आनन्द की खोज कहाँ से प्राप्त होगी? चाहिए श्रेष्ठ चरित्र, सरलता, पवित्रता एवं काय-मनोवाक्य से ईश्वर-निर्भरता।

बहुत से लोग कहते हैं, "आशीर्वाद दीजिए।" ठाकुर के शिष्यगण कहते, "आशीर्वाद तो है ही, कृपा की वायु सब समय बह रही है।" किन्तु वह हवा जो हमारे शरीर को स्पर्श कर रही है, वह हम समझते कहाँ हैं? समझने के लिए योग्यता चाहिए। वह योग्यता साधन-भजन के द्वारा अर्जित करनी होती है। प्राणपन चेष्टा एवं त्याग तपस्या न रहने से मात्र आशीर्वाद से क्या होगा? आशीर्वाद के योग्य होने के लिए जीवन को संयम एवं सुनियत्रित करना चाहिए। मन को वश में लाना होगा। हम सब मन के दास हैं, किन्तु मन को 'दास' कितने लोग कर सकते हैं? हम सब को मन को अपना दास बनाना होगा। इसीलिए त्याग-तपस्या, संयम, विवेक-वैराग्य चाहिए। और इसके साथ-साथ चाहिए एकान्त भाव से ईश्वर निर्भरता। ठाकुर कहते, "इच्छावास"। बहुत अच्छी बात है! स्वयं की इच्छा को उनकी इच्छा में "लय" करना होगा अर्थात् ऐसी एक अवस्था का निर्माण करना होगा, जहाँ मेरी स्वयं की इच्छा कुछ नहीं रहेगी—सभी "उनकी इच्छा," "राम जी की इच्छा" हो जाएगी। मात्र मुँह से बोलने से नहीं होगा,। अन्तर में गाँठ बाँध देना होगा। तब देखा जाएगा, मन को वश में करने के लिए मुझे अलग से और कोई चेष्टा करनी नहीं पड़ रही है। तब मन प्रभु-भक्त कुत्ते के जैसा मेरे पैर के पास पड़ा रहेगा। मन को वश में लाने के लिए प्रतिदिन व्याकुल होकर उनके पास प्रार्थना करनी होती है। व्याकुल मन से प्रार्थना करने पर वे सुनते हैं एवं सब व्यवस्था कर देते हैं।

हम लोग साधन-भजन की त्याग-तपस्या की, विवेक-वैराग्य की बातें करते हैं। यह सब हम लोगों को करना ही होगा, किन्तु इसी के साथ यह भी जान लेना होगा, कि उनकी कृपा ही असल है। अवश्य हम लोग नित्यप्रति उनकी कृपा पाते हैं। वे तो अपनी कृपा का भंडार सबके लिए खोल कर ही रखे हैं, हरिनाम लूट लो जैसे भाव में दोनों हाथ भरकर वितरण किये जा रहे हैं। किन्तु दुर्भाग्य हम लोगों का है,—हमलोग यह समझते कहाँ हैं? उनकी कृपा ले कहाँ सकते हैं? वास्तव में उनकी कृपा से ही उनकी कृपा समझ में आती है, उनकी कृपा का अधिकारी हुआ जाता है। प्रतिदिन प्रतिक्षण उनकी कृपा अयाचित भाव से हमारे ऊपर बरस रही है, उनकी कृपा होने पर

ही इस बात की हम उपलब्धि कर सकेंगे। हम जब दु:खी होते हैं, आघात पाते हैं, हमारे जीवन में जब दुर्भाग्य का आगमन होता है तब क्या हम सोचते हैं कि इन सब के पीछे वे हैं? इन सब में भी उनकी कृपा को हम क्या देख सकते हैं? साधारणत: नहीं देख सकते। जब देख सकेंगे तभी हम उस परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे। जब दु:खों के बीच, विपदाओं के भीतर उनकी ही करुणामय उपस्थिति हम देख सकेंगे तभी समझेंगे कि हम उनकी कृपा पा रहे हैं। मात्र दु:ख क्यों, सुख जब मिले तब भी उन्हें न भूलें, जिससे हम समझें यह सुख उन्हीं का दिया हुआ है। दु:ख के समय जिससे स्मरण रहे कि यह दु:ख देने के पीछे उनकी कोई परिकल्पना है, बाद में इसी पथ के सहारे ही मेरे जीवन में सुख आएगा। यह अनुभूति जब आएगी तब समझना होगा, उनकी कृपा से ही उनकी कृपा समझ में आती है।

सब कुछ में उनकी कृपा के अस्तित्व पर विश्वास आध्यात्मिक जीवन का एक गुरुत्वपूर्ण अंग है। इस विश्वास को एवं समग्ररूप से हमलोगों की अध्यात्मिक चेतना को बलिष्ठ बनाने के लिए साधुसंग अत्यन्त आवश्यक है। साधुसंग के फलस्वरूप ही मनुष्यत्व जागता है और भगवान के ऊपर मति होती है (भक्ति होती है)। सद्ग्रंथ-पाठ, तीर्थभ्रमण, व्रत-उपवास, स्मरण-मनन, व्याकुलता आध्यात्मिक जीवन गठन में अत्यन्त सहायक है इसमें संदेह नहीं। किन्तु ज्ञानसिद्ध व्यक्ति के सान्निध्य एवं प्रथप्रदर्शन में रहना ही अध्यात्मिक जीवन का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग है। फिर भी इस जीवन में सबसे अधिक आवश्यकता है स्वयं की चेष्टा की। परिश्रम न करने से कुछ भी प्राप्त नहीं होता। वे तो देने के लिए हाथ बढ़ाए हुए हैं, किन्तु पाने के लिए मुझे प्रयत्न करना होगा। माँ कहती, "सदा-सर्वदा सत्-असत् विचार करना होता है और खूब प्रयत्न करना होता है।" जो आलसी हैं वे स्वयं को धोखा देते हैं। वे ज्ञान-विवेक त्यागकर जन्म-जन्मान्तर दु:ख-कष्ट खींच लाते हैं। उनके समान मूर्ख एवं अभागा और कोई है? आलस्य आध्यात्मिक जीवन का एक भयंकर प्रतिरोध है। धर्म जीवन में आलस्य का कोई स्थान नहीं है। मन का स्वाभाव ही है शिथिलता एवं निकम्मापन। किन्तु पुरुषार्थी कठोर परिश्रम एवं संयम-नियम के द्वारा मन का अपनी इच्छानुसार अपने इष्टपथ पर परिचालन कर सकता है। यह मनुष्य जीवन बड़े भाग्य से मिला है, आलस्य एवं शिथिलता से उसे नष्ट करने से अपूरणीय क्षति होगी। हम जन्मान्तर में विश्वास करते हैं। उद्यम पूर्वक इस जन्म में वहीं से ही फिर जीवन शुरू करेंगे। अत: इस जीवन के एक भी दिन—एक भी मुहूर्त का जिससे अपव्यय न हो, अपव्यवहार न हो।

ठाकुर के शिष्यों को देखा है, उनका प्रत्येक काम ठाकुर केन्द्रित था। वे लोग हर समय ठाकुर की बात ही करते—कहते थे ऐसा नहीं बल्कि उनका प्रत्येक कार्य, प्रत्येक आचरण, आचार-व्यवहार-सब कुछ देखने में ही लगता कि उनका जीवन ठाकुरमय हो गया है। मठ में ठाकुर सच ही विराजमान हैं, वे संघ परिवार के जीवन्त सदस्य हैं एवं वे ही मुकुटमणि हैं—यही था उन लोगों का मूल भाव एवं भावना।

कम उम्र में ही साधन-भजन अधिक कर लेना चाहिए। यही समय साधन-भजन का उपयुक्त समय है। उम्र बढ़ जाने से शरीर की शक्ति कम होती जाती है, मन की क्षमता भी कम होती जाती है। महराज कहते," बल बुद्धि भरोसा, पैरोलेई फरसा"। ३० बर्ष की उम्र के पहले बल बुद्धि पर भरोसा करना चाहिए। तीस के बाद बल-बुद्धि क्रमश: कम होती जाती है।—अनु०

अतः जितना कर सकते हैं उतना समय हम साधन-भजन में व्यतीत करें। उनके स्मरण मनन में, नाम चिन्तन में व्यतीत करें। अमावस्या, पूर्णिमा, एकादशी, दुर्गापूजा के तीन दिन, कालिपूजा, जगदाद्धात्री पूजा, शिवरात्रि आदि के उपलक्ष में भी उपवास अथवा अल्पाहार या शाकाहारी भोजन करना बहुत अच्छा है। इससे मन शान्त रहता है, संयत रहता है फलस्वरूप इन दिनों में अधिक समय साधन भजन किया जा सकता है, कुछ दिन बाद महसूस होगा कि उपर्युक्त दिनों को जिससे इसी प्रकार व्यतीत कर सकें। इन दिनों में प्रकृति में एक विशेष आध्यात्मिक तरंग प्रवाहित होती है। अपने मन को संयम द्वारा पवित्र करने से उस तरंग का प्रवाह हम अपने अन्तर में अनुभव कर सकते हैं। लक्ष्य करने पर देखेंगे कि इन दिनों में संधि-क्षण का समय स्मरण-मनन के लिए विशेष उपयोगी होता है। 'संधि-क्षण अर्थात् प्रातः द्विप्रहर, सूर्यास्त एवं रात्रि का प्रथम प्रहर का मध्यवर्ती काल और मध्यरात्रि। मध्यरात्रि को कहते हैं महानिशा। महानिशा में जपध्यान बहुत अच्छी तरह होता है। उस समय समस्त प्रकृति निस्तब्ध एवं शान्त होती है मानो प्रकृति स्वयं ही भगवान के ध्यान में मग्न है।

ठाकुर-सेवा, गुरु-सेवा, साधु-सेवा बहुत कठिन है। मन में अहंकार रहने से सही ढग से सेवा नहीं होती। जितना निरहंकार हुआ जाएगा उतनी ही सेवा सार्थक होगी। अहंकार पूर्वक सेवा करना महाअनर्थकर है। ठाकुर को हम लोगों ने नहीं देखा है, परन्तु ठाकुर के शिष्यों को हम लोगों ने देखा है। उन लोगों से सुना है, ठाकुर की सेवा करते-करते उन लोगों का मानो एक षष्ठ इंद्रिय तैयार हुआ था। मुँह से कुछ बोलने के पहले ही ठाकुर को क्या चाहिए वह ये लोग समझ जाते थे। हरि महराज (स्वामी तुरीयानन्द) कहते, "जिस सेवक को यदि सब समय बोलना पड़े कि क्या चाहिए, वह सेवक अधम सेवक है। बोलने के पहले ही जो समझ ले, वह उत्तम सेवक है।" महाराज कहते, "जिस सेवक को प्रयोजन की बात बतानी पड़े वह अधम सेवक हैं; जो सेवक स्वयं ही सेव्य के प्रयोजनानुसार सब कुछ करे, वह मध्यम सेवक है और जो सेवक नियमित सेवा के बाहर सेव्य की इच्छा एवं प्रयोजन समझकर सेवा करे वह उत्तम सेवक है।" कहा गया है—"सेवापराध"। सेवा करते करते सेवक के भीतर एक नया अहंकार जन्म लेता हैं। यह अहंकार सेवक के सेवाभाव को व्यर्थ कर देता हैं। सेव्य के प्रति एक अधिकार बोध आता हैं, जिससे बाद में सेव्य के प्रति अश्रद्धा एवं ताच्छिल्यभाव का उदय होता हैं। कहना न होगा, इस भाव से सेवा नहीं होती, जो होती हैं वह सेवा के नाम पर अपराध होता हैं। इसको ही कहते हैं सेवापराध। इसके समान अपराध और दूसरा नहीं हैं। इसीलिए सेवक को अत्यन्त सतर्क रहना होगा, जिससे मन में किसी प्रकार का अभिमान, अहंकार न आ सके। अहंकार शून्य सेवा गृहस्थ-संन्यासी-दोनों का आदर्श हैं। घर गृहस्थी का काम हो या फिर गुरु-आश्रम का काम हो, ऑफिस-कारखाना का काम हो या घर में खाना बनाने के लिए सब्जी काटना ही हो, रसोई बनाना ही हो या पूजा का काम हो, ठीक सेवाभाव लेकर यदि हम कर सकें तो फल सर्वत्र एक ही होगा और चित्त की प्रसन्नता। यही प्रसन्नता ही भक्त को ईश्वर दर्शन के पथ पर ले जाती हैं एवं ज्ञानी को ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के पथ पर। स्वामी जी इस सेवा के आदर्श को इस बार दिखा गए हैं। उनके गुरु भाइयों ने अपने जीवन में उसी आदर्श को अपनी कथनी एवं करनी में वास्तविकता प्रदान की हैं। हम लोग मठ में उसी नक्शे का अनुसरण करने की चेष्टा कर रहे हैं। उनलोगों का यह नक्शा इस युग के मनुष्यों के

लिए एक 'मॉडल' अपना आदर्श हैं। जो जितना इस आदर्श को अपने स्वयं के जीवन में प्रतिफलित कर सकेगा, उसका जीवन उतना ही सार्थक होगा। गीता में पाँच हजार वर्ष पहले भगवान श्री कृष्ण ने यह आदर्श मनुष्य को दिया था किन्तु हमलोग वह भूल गए थे। स्वामी जी ने आकर इस युग में श्रीकृष्ण के उसी आदर्श को पुनः नये रूप में हम लोगों के समक्ष रखा। उन्होंने कहा, कोई भी कर्म, कर्म नहीं हैं, सब कर्म ही सेवा हैं। सब कर्म ही पूजा हैं—उपासना हैं। वे कहते थे प्रथम Work and workship अर्थात् कर्म और पूजा। फिर Work as worship अर्थात् कर्म को पूजा के रूप में देखने की चेष्टा और अन्त में Work is worship अर्थात् कर्म ही पूजा है।" श्री-कृष्ण ने इस तरह इतना नहीं कहा था किन्तु स्वामी जी ने कहा था एवं इसे आदर्श रूप में अपने त्यागी एवं गृही गुरुभाइयों के पास-प्रचार किया था। मठ मिशन के कार्य में उसी आदर्श का ही प्रतिफलन हम देखते हैं।

ठाकुर के मानस पुत्र के साथ साथ उनके कुछ त्यागी शिष्यों की सेवा करने का सौभाग्य हम लोगों को मिला था। उनकी सेवा साधारण सेवा नहीं थी। वे सभी ब्रह्मज्ञानी महापुरुष थे। वे नर-रूप में अवतीर्ण भगवान के अन्तरंग पार्षद थे। इसलिए हमें स्वयं को सदा-सर्वदा सतर्क रहना होता था। किन्तु हम लोगों ने जो उनकी सेवा की है वह हम लोगों की योग्यता के कारण नहीं थी बल्कि उन्होंने कृपा करके सेवा करने का सुअवसर दिया था एवं सेवा करा ली थी। हम लोगों की जो योग्यता नहीं थी इस विषय में किसी प्रकार का संदेह ही नहीं है, परन्तु उन लोगों के सान्निध्य में, उन लोगों को देखकर हमलोगों ने अपना काम किया था। उन्होंने हम लोगों को अपनी सेवा का अधिकार देकर हम लोगों के जीवन को कृतार्थ किया था।

एक दिन की घटना याद आती हैं। दोपहर में महाराज खाने के लिए बैठे हैं। मैंने भात एवं अन्यान्य सब्जी उनके सामने रखी। भात खाने के समय महाराज देखते हैं, एक माचिस की तीली का ज्वलनशील भाग भात में है। महाराज थाली से हाथ हटा लेते हैं। गंभीर शब्दों में कहा, "जा उठा कर ले जा, और नहीं खाऊँगा। मेरे सामने और कभी भी मत आना।" महाराज बिना खाए ही उठ गये। दुःख के मारे मेरा हृदय टूटने लगा। कुछ दिनों से अन्य सेवकगण महाराज की सेवा कर रहे हैं। गुरु-वाक्य शिरोधार्य कर मैं और महाराज के सामने नहीं जाता, अपच पीछे से अन्यान्य सेवा का कार्य मैं किए जा रहा हूँ। मन-प्राण हताशा से पूर्ण था। एक महा-ग्लानि ने मुझे आच्छन्न कर रखा था। महाराज की सेवा में अपनी इस लापरवाही को मैं किसी भी प्रकार भूल नहीं पा रहा था। खाने में रूचि नहीं, आँखों में नींद नहीं, दिन पर दिन शरीर सूखने लगा। इसी प्रकार बहुत दिनों तक चला। महाराज के नजदीक के कमरे में रहते थे महापुरुष महाराज। मुझे वे बहुत प्यार करते थे। मेरी दुरावस्था देख कर मन ही मन उन्हें अत्यन्त कष्ट हुआ। एक दिन महाराज के पास जाकर कहा, "देखो, सुज्जि*

---

* स्वामी निर्वाणानन्द का पुकारने का नाम था 'सूर्य'। महाराज, महापुरुष महाराज, बाबूराम महाराज, हरि महाराज, लाटू महाराज उन्हें प्यार से 'सुज्जि' या 'सुज्जु' कहकर पुकारते। कभी-कभी महाराज कहते 'सुज्जि बाबा' (सुज्जि बेटा)। परन्तु 'सूर्य' स्वामी निर्वाणानन्द के पूर्वा-श्रम का नाम था या नहीं यह ठीक से जाना नहीं जाता। बेलुड़मठ के लिस्ट से जाना जाता है, उनके पूर्वाश्रम का नाम था गिरीन्द्र कुमार सेन। 'सूर्य' नाम सम्भवतः महाराज द्वारा ही दिया गया

है। परन्तु यह भी होना विचित्र नहीं है कि, भूतपूर्व मुक्ति संग्रामी (स्वतन्त्रता सेनानी) स्वामी निर्वाणानन्द स्वदेशी आंदोलन के समय छद्मनाम 'सूर्य' रखा था। क्या महाराज ने वह बात जानकर 'सूर्य' नाम बरकार रखा था? अवश्य क्रांतिकारी लेखक नलिनी किशोर गुह अपने 'बंगाल में विप्लववाद' नामक विख्यात ग्रन्थ में जो सब क्रांतिकारी बाद में संन्यास ग्रहण किया था उनके नामों की तालिका दी है। उस तालिका में है "सूर्यकुमार सेन—स्वामी निर्वाणानन्द।"—सम्पादक उद्धरण

का कोई दोष नहीं है। प्राण देकर कैसी सेवा करता हैं। जो भूल हुई है वह उसके अज्ञान में हुई हैं। उसे तुम अपने पास आने दो। पास में रखकर सेवा करने का मौका दो। लड़का एकदम आधा हो गया है।" महाराज ने मात्र सुन लिया, कोई उत्तर नहीं दिया। महापुरुष महाराज लगातार तीन-दिन तक यह बात महाराज से कहते रहे। अन्त में महाराज की कृपा हुई। मुझे पास बुलाकर सिर पर हाथ फेरते हुए परम स्नेह से कहा, "सुजि बेटा, तू मेरो सेवा जैसे कर रह था, वैसे करना।" इस घटना से समझ में आता है कि मेरी योग्यता से नहीं बल्कि महाराज की अहैतु की कृपा से उनकी सेवा करने का परम सौभाग्य मुझे मिला था।

भूल-चूक रहने से भी वे लोग ठोकर नहीं मारते थे। भूल-चूक सब सुधार कर वे लोग हम लोगों को ठोक-पीट कर अपना लेते थे। एक दिन और एक अपराध कर बैठा। महाराज नेएक काम करने के लिए आदेश दिया था किन्तु अन्य काम में व्यस्त रहने के कारण काम करने में थोड़ी सी देर हो गयी थी। इसीलिए महाराज ने बाद में मुझे कठोर दंड दिया था। मात्र गाली-गलौज ही हीं नहीं, मारे भी थे। कुछ ही दूर बाबूराम महाराज ठाकुर के भोग के लिए सब्जी काट रहे थे। देखकर दौड़ते हुए आकर महाराज के हाथ से मुझे छुड़वा कर कहा, "भाग, भाग।" परन्तु मैं न भागकर दीवार के पास सीधा होकर खड़ा रहा। बाबूराम महाराज ने फिर कहा, "अभी भागो यहाँ से।" मैंने कहा, "कहाँ भागूगाँ महाराज? जहाँ से भागना था वहाँ से तो भाग आया हूँ (अर्थात संसार त्याग करके आ गया हूँ) और कहाँ जाऊँगा?" बाबूराम महाराज चुप होकर गये। महाराज ने भी सुना। क्या समझे कौन जाने! मुझे पास बुलाकर अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा, "गुस्सा मत करना बेटा बुडढ़ा हो गया हूँ न।" मैंने महाराज के पैरों पर लिपटकर रोते-रोते कहा, "आपने ठीक ही किया है महाराज इस तरह शासन नहीं करने से मेरी गलती सुधरेगी कैसे?" वास्तव में उनलोगों के शासन के बीच में था उनका अपार्थिव प्यार एवं करुणा।

महाराज की अहैतुकी कृपा की बात और क्या बोलूँ। महाराज तब भुवनेश्वर मठ में थे। उस दिन था चन्द्रग्रहण। संध्या के समय महाराज मानो स्वयं ईश्वर के समान मठ भवन के बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठे हुए है। ध्यानस्थ हैं। मैं उनके पास सीढ़ी के नीचे पैर झुलाकर बैठा हूँ। आँख बंद करके मन ही मन जप कर रहा हूँ। ग्रहण लगभग समाप्त होने को हैं। अचानक पैर में कुछ ठंड का स्पर्श हुआ। आँख बंद अवस्था में ही हाथ से उसे हटा दिया। कुछ देर बाद फिर वैसा ही स्पर्श हुआ, आँख खोलकर देखा, पहले लगा पैर के उपर एक मेंढक बैठा हैं किन्तु हाथ से हटाने के समय देखता हूँ—साँप! चन्द्रप्रकाश में अच्छी तरह ताक कर देखा गोखरू साँप! पैर के उपर कुण्डली मारकर बैठा था। भुवनेश्वर उस समय विषधर साँप के लिए विख्यात था। 'साँप' कहकर मैं जोर से चिल्ला उठा, उससे महाराज का ध्यान भंग हो गया। चन्द्रप्रकाश में देखा साँप धीरे-धीरे उतर

कर चला जा है। महाराज बोल उठे, "चुपचाप बैठे रहो, थोड़ा सा भी हिलना नहीं।" साँप चले जाने के बाद महाराज ने कहा, "जा बेटा, गुरु कृपा से इस यात्रा में बच गया।" मेरे मन में आया कि विषधर साँप की इस घटना में गुरु के प्रति सम्पूर्ण विश्वास स्थापन के लिए ही क्या गुरु ने इस प्रकार की शिक्षा दी ?

(क्रमशः)

□

श्रीसारदादेवी की वाणी

★

दैवी कृपा

● प्रश्न : भगवान् के दर्शन कैसे प्राप्त होंगे ?

उत्तर : यह तो उनकी कृपा से होता है। किन्तु साधक को निरन्तर ध्यान और जप करते रहना चाहिए। इससे मन की अपवित्रता दूर होती है। साधक को पूजा आदि आध्यात्मिक साधनाएँ करते रहना चाहिए। जैसे फूल को हाथ में लेते ही उसकी सुगन्ध आती है, या जैसे चन्दन को पत्थर पर घिसने से ही उसकी सुवास मिल जाती है, वैसे ही निरन्तर ईश्वर का चिन्तन करते रहने से आध्यात्मिक जागृति होती है।

उनकी कृपा के बिना कुछ भी नहीं पाया जा सकता। हमने कितना भी जप किया हो, कितनी भी तपस्या की हो, पर किसी को कोई विशेष फल नहीं होता। जब तक महामाया पथ को रोके हुए है तब तक कोई कैसे मुक्त हो सकता है ? हे जीव, ईश्वर के प्रति शरणागत होओ। केवल उनकी शरण में जाओ। तभी महामाया दया करेंगी और मुक्ति का अवरोध हटा देंगी।

● एक शिष्य का नैराश्यपूर्ण पत्र सुनकर श्रीमाँ ने अत्यन्त गम्भीर स्वर में प्रखरता से कहा, "अरे, वह कैसे सम्भव है ? ठाकुर* का नाम क्या साधारण वस्तु है ? वह नाम किसी तरह व्यर्थ नहीं होगा। जो ठाकुर की शरण में आये हैं, उन्हें इष्ट-दर्शन अवश्य होगा। यदि और किसी समय न हो तो मृत्यु के पूर्वक्षण होगा ही।"

● निष्ठापूर्वक जप, तप और कर्म करते रहो। तभी तुम्हें उनकी कृपा प्राप्त होगी। उनकी कृपा पृथ्वी के सभी प्राणियों पर निरन्तर बरस रही है। उसकी याचना करना अनावश्यक है। निष्ठापूर्वक ध्यान करते रहो और तब तुम्हें उनकी अनन्त कृपा का ज्ञान हो जाएगा। ईश्वर श्रद्धा, भक्ति और प्रेम चाहते हैं। केवल बाहरी शाब्दिक उच्चारण उनका स्पर्श भी नहीं कर सकते।

संस्मरण

एक संन्यासी की स्मृति में
सर्वत्यागी देशनायक

—प्रणवेश चक्रवर्त्ती

[प्रस्तुत लेख बंगला दैनिक 'वर्तमान' के २३ जनवरी, १९९८ अंक में प्रकाशिश हुआ था। इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर में कार्यरत स्वामी भावात्मानन्द जी ने किया है।—सं०]

सिंगापुर, सन् १९४३ ई०। विजयादशमी की वह रात्रि जब दुर्गापूजा सद्य सम्पन्न हो चुकी थी। नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने अपने आवास से इंडियन इंडिपेन्डेन्स लीग के माध्यम से स्थानीय रामकृष्ण मिशन आश्रम में एक गाड़ी भेजी और पत्र के द्वारा रामकृष्ण मिशन के तत्कालीन अध्यक्ष स्वामी भास्वरानंद को अपने आवास पर मिलने का विनीत अनुरोध किया।

प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि १७९, बॉटली रोड स्थित सिंगापुर शहर में सन् १९२८ ई० में रामकृष्ण मिशन की एक शाखा स्थापित हुई थी।

उसी गाड़ी से स्वामी भारस्वरानन्द गये—स्वामी विवेकानन्द के भावशिष्य नेताजी सुभाषचंद्र बोस से मिलने। आई० एन० ए० के सर्वोच्च अधिनायक सुभाषचंद्र के आवास के निकट पहुँचते ही सशस्त्र प्रहरियों ने उन्हें सम्मानपूर्वक सुभाषचंद्र के सचिव श्री हसन से परिचय कराया। तदुपरांत श्री हसन ने उन्हें ऊपर के कमरे में सुभाषचंद्र से मिलाया। द्वितीय विश्वयुद्ध की उस महाप्रलयंकारी भयंकर रात्रि का वर्णन करते हुए स्वामी भास्वरानन्द ने बतलाया कि "उनके घर पहुँचते ही सुभाषचन्द्र ने अति विनीत तथा श्रद्धानत हो प्रणामकर बैठने का अनुरोध किया तथा अपने सहयोगियों को चाय लाने का आदेश दिया।"

इस एकांत परिवेश में सर्वत्यागी संन्यासी तथा सर्वत्यागी संन्यासी तुल्य राष्ट्रनायक के बीच आपस में सहजरूप से वार्त्तालाप शुरू हुआ। सुभाषचन्द्र ने उनसे सिंगापुर स्थिति रामकृष्ण मिशन के क्रियाकलापों को बतलाने का आग्रह किया। उत्कंठा को देखते हुए स्वामी भास्वरानन्द ने उनके समक्ष आश्रम के सारे क्रिया-कलापों तथा आगत समस्याओं का विस्तार से वर्णन किया। एकांत और आंतरिकता के उस वातावरण में वार्त्ताएँ चलती रहीं। 'चाय पर्व' भी समाप्त हो गया। कथा-प्रसंग के दौरान सुभाषचंद्र ने भी कलकत्ते से अपने महाभिनिष्क्रमण की बातें छेड़ते हुए बतलाया—"कारावास से निकलकर जब मैं एलगिन रोड स्थित अपने घर में था, उस समय न

जाने एक कैसी दैवी शक्ति से अभिप्रेरित हो गया जिसके फलस्वरूप घर से बाहर निकल चलने की तीव्र आकांक्षा जाग्रत हो गई। सर्वदा घर से बाहर निकलकर कुछ करने की इच्छा होती। सर्वदा ऐसा विचार आता कि अभी ही कुछ करने का समय है। क्या होगा यूँ ही अकर्मण्य पड़े रहकर? फिर मैंने मित्रों से परामर्श लिया और शीघ्र ही एक उपाय ढूँढ़ निकाला। मैंने अपने घर में सबों का प्रवेश निषिद्ध कर दिया। वैसे भी चंडी-गीता आदि का मुझे पाठ करते देख कोई मेरे पास नहीं फटकता! इस परिस्थिति का लाभ उठाकर मैं निकल पड़ा। देखा, मेरे सारे मित्रों ने अपने कर्त्तव्य निबाहे और इसीलिए मेरा यहाँ आना संभव हुआ।"

प्रसंगवश स्मरणीय है कि १६४० के जून में सुभाषचंद्र के द्वारा कलकत्ते के कुख्यात 'हालवेल मोनुमेंट' हटाने का आन्दोलन शुरू करने के अभियोग में उन्हें 'खतरनाक' जानकर १६४० की —जुलाई को अंग्रेजों ने गिरफ्तार कर लिया तथा घर पर ही नजरबंद कर दिया। किन्तु १६४१ की १७ जनवरी को रहस्यपूर्ण ढंग से कलकत्ते के उस मकान से गायब होकर विभिन्न संकटों और समस्याओं का सामना करते हुए २ मार्च को वे जर्मनी पहुँचे। फिर १६४३ के २१ अक्तूबर को उन्होंने सिंगापुर में आजाद हिन्द सरकार का गठन किया। जो भारत की सर्वप्रथम स्वाधीन सरकार थी और जिसके वे सर्वोच्च अधिनायक हुए।

अपनी स्मृतिकथा में स्वामी भास्वरानंद लिखते हैं, सन् १६४२ के किसी बीच के महीने में सुभाषचंद्र टोकियो से विमान पर सिंगापुर पहुँचे। शहर के सर्वश्रेष्ठ 'चे क्याथे' नामक सिनेमा हॉल में उनका अभिनन्दन समारोह सम्पन्न हुआ। उनके साथ कई जर्मनी-प्रवासी भारतीय भी थे। निर्धारित समय पर रासबिहारी वसु सुभाष बाबू को लेकर भाषण-मंच पर पधारे। अपार संख्या में उपस्थित जन-समूह का आह्वान करते हुए रासबिहारी बसु ने कहा—'आपके समक्ष उपस्थित हैं आपके प्रिय नेता सुभाष बाबू। मैं इन्हें आपके हाथों सुपुर्द करता हूँ। आज से ये ही आपके सर्वोच्च अधिकारी होंगे⋯ये ही आपको हमारी जन्मभूमि—भारतमाता की आजादी के पथ पर अग्रसर करेंगे।⋯" तत्पश्चात् सुभाष बाबू ने भविष्य की अपनी कुछ योजनाएँ बतलाईं।

सुभाष बाबू के आगमन का संवाद विद्युत-प्रवाह की भाँति फल गया। सिंगापुर के समुद्रतीर पर स्थित 'मेयर्स मेन्सन' नामक गृह उनका आवास बना। इस घर को सशस्त्र प्रहरियों के द्वारा हमेशा सुरक्षित रखा जाता था। इसी मकान में सुभाष बोस से मिलने आए थे स्वामी भास्वरानंद। सुभाषचंद्र जब कभी आते-जाते तब सुरक्षा हेतु वे सदा सशस्त्र रक्षकों से युक्त होते तथा सर्वदा उनके लिए एक हवाई जहाज तैयार रहता।

स्वामी भास्वरानंद ने लिखा है, कुछ दिनों के बाद उन्होंने एक विराट् सभा का आयोजन किया। सिंगापुर नगरपालिका कार्यालय के सामने विशाल मैदान में जनता की भीड़ समुद्र की तरह उमड़ पड़ी। उस दिन सुभाषचंद्र ने अपने मलाया आने के उद्देश्य पर डेढ़ घंटे का भाषण किया। भाषण प्रारम्भ होने के साथ ही मूसलधार वर्षा होनी शुरू हुई। किंतु आश्चर्य! तनिक भी विचलित न होकर वे लगातार जनता को संबोधित करते रहे। वर्षा की परवाह किये बिना जनता भी मंत्रमुग्ध हो उनकी वक्तृता सुनती रही। सभी भींग चुके थे किंतु अपने घरों को लौटते वक्त सबों के चेहरे पर स्पष्टतया शांति झलक रही थी। इस सभा का उल्लेख करते हुए सुभाष बाबू कहा करते थे 'देखा आपने, उस दिन की मूसलाधार वृष्टि में भी किस

तरह लोगों ने अविचलित होकर भाषण सुना। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हमें अपने कार्यों का उनकी पर्याप्त सहानुभूति प्राप्त होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं।'

स्वामी भास्वरानन्द जी एक दिन सुभाषचंद्र से भेंट करने गए। नेताजी ने कहा, "संसार के इतिहास में ऐसा कहीं नहीं दीखता कि एक पराधीन जाति बिना किसी प्रतापशाली स्वाधीन जातिकी सहायता के ही स्वाधीनता संग्राम में अग्रसर हुई है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में भी हम इसी प्रकार की सहायता चाहते हैं ।···आज के घटनाक्रम में जापान से हमें सहायता मिलना संभव हो उठा है। इस सुनहले मौके को चूकने से आगामी सौ वर्षों में भी ऐसा सुअवसर मिलेगा या नहीं ऐसा कहना संभव नहीं है। सुतरां, मैंने यह ठीक किया है कि अंग्रेजों के आधिपत्य से भारत को मुक्त करने की चेष्टा में जापान से सहायता लेकर यथाशक्ति संग्राम करता रहूँगा। गीता में भी कहा गया है—'हमारा अधिकार केवल कर्म में है, फल में नहीं।' कार्य तो हमें करते जाना है, और फल उनके (ईश्वर के) हाथों में हैं!"

स्वामी भास्वरानंद ने पूछा "क्या आपको ऐसा लगता है कि आपकी सहायता के लिए जापानी भारत पर अधिकार कर लेंगे? संधि भंग कर असत् उद्देश्य के वशवर्ती होकर यदि वे आपका त्याग करें तो क्या होगा?" उनका उत्तर था "जहाँ तक मैं समझता हूँ ऐसा होने की कोई संभावना नहीं है। क्योंकि स्वाधीनता संग्राम हमें चलाना ही होगा। भारत के हित के लिए इस देश की सेनाओं के द्वारा कार्य प्रारम्भ होगा। जापानियों से तो केवल हथियार प्राप्त करना होगा।···किसी भी प्रकार बांग्लादेश में प्रवेश कर पाने पर हमारी सारी चिंताएँ दूर हो जायेगी। हमारा पूर्ण विश्वास है कि बांग्लादेश पहुँचते ही हमें सबों से आशातीत सहायता मिलेगी। मेरा इस बात पर भरोसा है कि इस कार्य में मेरे देश-वासी मुझे अवश्य सहायता करेंगे। जापानियों के संधि भंग करने की संभावना को लेकर हमें पहले से सतर्क रहना होगा।"

इस प्रकार कुछ वार्तालाप के बाद स्वामी भास्वरानन्द ने उन्हें कहा 'आप हमारे मिशन की कार्य पद्धति से अनभिज्ञ नहीं हैं। मिशन के उद्देश्य तथा आदर्श को बरकरार रखते हुए हम यथासंभव आपकी सहायता करेंगे। इस विषय में आप निश्चित रहें।' इसके बाद भास्वरानन्द लिखते हैं "उनके अनुरोध से मैंने वहीं रात्रिभोजन किया और आश्रम लौटते-लौटते करीब बारह बज गए। भेंट करने जाने से ही वे भोजन कराए बिना मुझे नहीं छोड़ते।"

दिसम्बर महीने में जननी सारदामणि के जन्मोत्सव का निमन्त्रण पाकर सुभाष बसु रामकृष्ण मिशन उपस्थित हुए। स्वामी भास्वरानंद के अनुसार 'उस दिन' वे ठाकुरघर में आधा घंटा ध्यानाविष्ट होकर बैठे रहे। पूजा की समाप्ति पर उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया तथा कुछ देर विभिन्न विषयों पर बातचीत चलती रही। एक घंटा इसी प्रकार बीत गया। चंडी के प्रति विशेष उत्सुकता जताने पर भास्वरानन्द महाराज ने उन्हें चंडी की अपनी व्यक्तिगत पुस्तक उपहार-स्वरूप भेंट की जिसे पाकर सुभाषचंद्र अति प्रसन्न हुए।

स्मृतिकथा के अनुसार नेताजी रामकृष्ण मिशन के कार्यों के एक बड़े समर्थक थे। वहाँ के मिशन संचालित अनाथालय के लिए अनुरोध करने पर वे गृह-निर्माण आदि कार्यों के लिए यथेष्ट सहायता प्रदान करते थे। गृह-निर्माण हेतु उन्होंने करीब ५० हजार डालर अनुदान के रूप

में प्रदान किये। इतना ही नहीं उन्होंने ५० हजार डालर और भी संग्रह किए। उन्होंने स्वयं ही छात्रावास का द्वारोद्घाटन किया। अनाथालय के बालक-बालिकाओं के लिए अन्न-वस्त्र की व्यवस्था भी उन्होंने की, जो युद्धकालीन 'ब्लैक-मार्केट एवं फुड-कन्ट्रोल' की परिस्थिति में ३०० बालक-बालिकाओं के लिए आश्रम की ओर से नामुमकिन हो उठा था।

नेताजी की उद्यमिता के फलस्वरूप ही सिंगापुर रामकृष्ण मिशन के स्कूल को 'इण्डियन नेशनल स्कूल' के रूप में परिणत किया जा सका। इस विद्यालय में सैन्य-प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई जिसके अभ्यास को देखने नेताजी स्वयं एक बार मिशन आए। किसी और दिन आकर वे छात्रों का 'कॉन्सर्ट' भी सुने। पाँचवीं बार उन्होंने स्वयं मिशन में ही सभा का आयोजन किया। इस सभा में कई जापानी प्रतिनिधियों को भी उन्होंने आमंत्रित किया तथा मिशन के सम्बन्ध में अनेक बातें जापानी बंधुओं को बतलायी।

सिंगापुर में नेताजी ने जब पाया कि ५० हजार लोगों की एक विराट् सैन्यवाहिनी समर भूमि में अग्रसर होने को कटिबद्ध है तब उन्होंने शीघ्रता से अपना कर्मक्षेत्र रंगून बनाया। अन्त में स्वामी भास्वरानन्द लिखते हैं—सीमान्त देशों से लौटे हुए अनेक योद्धाओं के मुंह से हमने सुना है कि वे नेताजी को अपने माता-पिता तथा देवतुल्य सम्मान देते थे और उनकी आंतरिक श्रद्धा तथा भक्ति किया करते थे। कौन कह सकता है नेताजी के इस प्रभावशाली व्यक्तित्व का मूल कारण क्या था? त्याग का मूलमंत्र एवं साधुसग ही क्या उनकी इस परिणति के मूल कारण थे? वास्तव में प्रबल प्रतापी महाराजा तथा चक्रवर्त्ती सम्राट से भी उनका स्थान ऊँचा था यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। □

प्रेरक-प्रसंग

आलोचना

क्रांति के पूर्व रूस में जार का राज चलता था। उन दिनों काउंट विट्टे प्रधानमंत्री थे। एक दिन उन्होंने अपने प्रेस सचिव से कहा कि उन लोगों की सूची तैयार करो, जिन्होंने अखबारों में उनके खिलाफ लिखा हो। लगभग हजारों लोगों की सूची बन गयी। प्रधानमंत्री विट्टे के आगे पेश की गयी। उन्होंने सचिव से पूछा—'इसमें मेरी तारीफ कितनों ने की है?'

'तीन ने, सरकार।'

बहुत ठीक! खिलाफ में लिखी गयी सबसे तीखी व व्यक्तिगत आलोचनाएं छांटकर मुझे दो। उनकी भी सूची तैयार कर दी गयी। सचिव ने पूछा—'क्या इन लोगों के लिए सरकारी दण्ड की व्यवस्था की जाये।' क्यों? 'ताकि प्रेस के कानूनों के मुताबिक इन लोगों के खिलाफ कार्रवाई की जा सके।'

'नहीं, मेरी मंशा यह नहीं थी। इन पत्रकारों में से मैं अपने तीव्र आलोचक को चुन लेना चाहता हूँ। उसे अपना वकील या पैरोकार बनाऊँगा। अपने अखबार का सम्पादन उसको सुपुर्द करूंगा।

अनुभव से मैंने यह सीखा है कि जो शख्श आपका सबसे कट्टर विरोधी रहा हो वही आपका सर्वश्रेष्ठ व सबसे अच्छा समर्थक साबित होता है। प्रेस सचिव सम्राट की इस महानता को देख कायल हुआ।

—हर्षवर्द्धन कुमार

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर में युवा रैली

देवघर (बिहार), २३ जनवरी। रामकृष्ण मिशन स्थापन-शताब्दी, पाश्चात्य जगत से स्वामी विवेकानन्द के विजयपूर्ण प्रत्यागमन शताब्दी एवं नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में आज रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर (बिहार) में एक विराट् युवा रैली का आयोज किया गया।

देवघर कॉलेज के संस्थापक प्राचार्य (अवकाश प्राप्त) श्री के० एन० सहाय उक्त सम्मेलन के अतिथि वक्ता थे और पूर्व सांसद श्री अशोक कृष्ण दत्त, कलकत्ता मुख्य अतिथि थे। डॉ० केदार नाथ सचिव रामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम, छपरा ने रैली की अध्यक्षता की। देवघर एवं इसके निकटवर्त्ती स्कूल-कॉलेज के प्रायः छः हजार छात्र-छात्राओं ने रैली में भाग लिया।

विद्यापीठ के छात्रों के द्वारा वैदिक मंत्रोच्चार एवं उद्‌बोधन-गीत तथा स्वामीजी की प्रतिमा एवं नेताजी के चित्र पर अतिथियों द्वारा माल्यार्पण के उपरान्त रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के सचिव स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज द्वारा स्वागत भाषण प्रस्तुत किया गया। अपने ओजस्वी एवं ऊर्जस्वी भाषण में स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज ने स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्र-प्रेम की विस्तार से चर्चा करते हुए कहा कि स्वामीजी ने देशवासियों से शंखघोष करते हुए कहा था कि 'आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानो आराध्य देवी बन जाय। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओं के हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ें और जिस विराट देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव-देवियों को पूजा करने होंगे, अन्यथा नहीं।' स्वामी सुवीरानन्द ने युवकों से स्वामी जी के आदर्शों को अपना कर अपना जीवन गठन करने और राष्ट्र का मंगल करने का प्रेरक शब्दों में आह्वान किया।

श्री के० एन० सहाय ने युवकों से नेताजी की अपेक्षाओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि नेताजी ने देश को आजादी के लिए युवकों से खून देने की माँग की थी। देश को आज भी युवकों के त्याग और सेवा की आवश्यकता है।

श्री अशोक कृष्ण दत्त ने स्वामी जी और नेताजी के राष्ट्रानुराग का तुलनात्मक वर्णन करते हुए कहा कि दोनों ही देश प्रेम के भाव से विभोर थे और दोनों ने ही देश को स्वाधीनता दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

डा० केदारनाथ लाभ ने अपने अध्यक्षीय भाषण में स्वामी विवेकानन्द के महत्तम समाज-सुधारक एवं भारत के भाग्य-निर्माता के रूप पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा कि मनुष्य-निर्माण करना ही उनका मूल उद्देश्य था। उन्होंने बताया कि स्वामी जी ने दीन दलितों के उद्धार के लिए अपने हृदय का रक्त उलींच कर धर्म को कर्म से और कर्म को धर्म से जोड़ दिया। डॉ० लाभ ने युवकों से पवित्र, नैतिक और निर्भीक होकर स्वामीजी के अग्निधर्मी सन्देशों से अपने जीवन का रूपान्तर कर नये भारत के निर्माण में अपने जीवन की बलि देने का मार्मिक आह्वान किया।

रेड रोज स्कूल, देवघर के प्राचार्य ने 'जय बोलो, भारत माँ की जय बोलो' का गान किया। ब्लू बेल्स स्कूल के छात्र चन्दन किशोर ने नेताजी तथा रेड रोज स्कूल की छात्रा ज्योति शर्मा ने स्वामीजी को श्रद्धांजलि दी।

अन्त में रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के प्राचार्य स्वामी आत्म प्रभानन्द जी महाराज ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

रैली में भाग लेने वाले विभिन्न स्कूलों के ८० छात्र-छात्राओं को डॉ० केदारनाथ लाभ, श्री अशोक कृष्ण दत्त और श्री के० एन० सहाय के हाथों पुरस्कार प्रदान किये गये।

रैली के समायोजन में स्वामी सुप्रकाशानन्द जी महाराज और स्वामी भावात्मानन्द जी महाराज ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

□

तराजू का भारी पल्ला नीचे की ओर तथा हल्का पल्ला ऊपर की ओर जाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति सांसारिक चिन्ताओं से भाराकान्त है वह संसार ही में डूब जाता है तथा जो व्यक्ति कम चिन्ता करता है, वह भगवान् के चरणों में उठ जाता है।

—श्रीरामकृष्णदेव

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण संस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक

स्वामी सुवीरानन्द

सचिव

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।

2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।

डाक पंजीयित संख्या - बी.एच.पी.-१४-८१

भगवान श्रीरामकृष्णदेव के शिष्य
स्वामी सारदानन्दजी द्वारा लिखित
भगवान श्रीरामकृष्णदेव की बृहत् जीवनी

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग

तीन खण्डों में मूल्य रु. १०५/-

भगवान श्रीरामकृष्णदेव का
अपने शिष्यगण, भक्त तथा
दर्शनार्थियों के साथ वार्तालाप

श्रीरामकृष्णवचनामृत

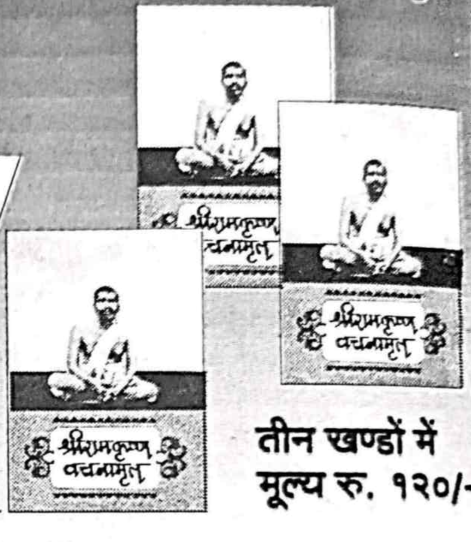

तीन खण्डों में
मूल्य रु. १२०/-

स्वामी गंभीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की
संपूर्ण विस्तृत जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में मूल्य रु. १४०/-

स्वामी विवेकानन्द कृत योगविषयक पुस्तकें

ज्ञानयोग
मूल्य रु.२५.००

राजयोग
मूल्य रु.२०.००

कर्मयोग
मूल्य रु.१३.००

भक्तियोग
मूल्य रु.१२.००

प्रेमयोग
मूल्य रु.११.००

अधिक जानकारी के लिए लिखें : रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।